आयुर्वेदीय चिकित्सा
में
प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम
2

आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय
(पाठ्यक्रम कोड-722)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
एन.एच. 24, सैक्टर-62, नोएडा-201309 (उ.प्र.)

(भाग-1)

आयुर्वेद के सिद्धान्त

आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम

आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय

मॉड्यूल-2

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
1,	आयुर्वेद सिद्धान्त	03
2.	मर्म चिकित्सा	13
3.	परिवार कल्याण	24
4.	पंचकर्म की मूलभूत अवधारणाएं	32
5.	पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रियायें)	36
6.	प्रधानकर्म	48
7.	पश्चात कर्म (शल्य पश्चात कर्म)	68
8.	पंचकर्म चिकित्सा में प्रयोग होने वाले औषधीय योग	76
9.	पंचकर्म चिकित्सा का व्यवहारिक पक्ष	90

1

आयुर्वेद सिद्धान्त

आयुर्वेदिक औषधि प्रथम दृष्टि में प्रेरणाप्रद और जीवन रक्षक होती है। स्वास्थ्य संरक्षण एवं उसकी देखरेख के लिए आयुर्वेदिक संहिताओं में एक उत्कृष्ट चर्चा का वर्णन किया गया है। इसमें दिन के कार्यों को लिए–दिनचर्या, रात्रिकालीन कार्यों को रात्रिचर्या एवं विभिन्न ऋतुओं में होने वाले कार्यों को ऋतुचर्या के अर्न्तगत रखा गया है। आयुर्वेद में सफल चिकित्सा दोष, धातु और मलों को असंतुलित अवस्था से सामान्य शरीर क्रियात्मक संतुलित अवस्था में बनाये रखना है। इसका उद्देश्य सिर्फ जीवाणुओं और विषाणुओं को मारने तक सीमित नहीं है बल्कि सूक्ष्मतम स्तर पर कार्य करके सम्पूर्ण शरीरगत संस्थान में साम्यावस्था स्थापित करना है। यह पद्धति सभी चिकित्साओं से अलग है जिसमें मुख से औषधि ग्रहण करने के अतिरिक्त, औषधि प्रयोग की विभिन्न विधियों तथा अन्य तरीकों का उपयोग भी किया जाता है। इस अध्याय में आयुर्वेद पद्धति के माध्यम से चिकित्सा के सिद्धान्त एवं चिकित्सा पद्धति के प्रकार पर भी विचार विमर्श होगा।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् हम जानेंगे–

- आयुर्वेदीय चिकित्सा एवं चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्त;
- आयुर्वेद की विभिन्न विशेषतायें;
- आयुर्वेदिक एवं आधुनिक चिकित्सा के बीच भिन्नता;
- सफल चिकित्सा के सिद्धान्त और परिभाषा;
- विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ।

1.1 आयुर्वेद पद्धति के सिद्धान्त

आयुर्वेद में चिकित्सा का विषय धातु साम्य है यथा– दोष, धातु और मलों को साम्यावस्था

में बनाये रखता है। क्योंकि आयुर्वेद यह मानता है कि रोग कुछ नहीं है बल्कि यह दोष, धातु और मलों की अस्थिरता की अवस्था है। आयुर्वेद में चिकित्सा का उद्देश्य निम्न है–

- घटे या अल्प दोषों को बढ़ाना।
- बढ़े हुए दोषों को बाहर निकालना।
- प्रकुपित दोषों का शमन करना।
- सम दोषों को साम्य में रखना।

प्रकृति से प्राप्त उपयुक्त औषध, आहार और विहार का प्रयोग करके सामान्य–विशेष के सिद्धान्त पर चिकित्सा की जाती है। शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार सामान्य की परिभाषा यह है कि जो द्रव्य हम बाहर से शरीर के अन्दर ग्रहण करते हैं वह शरीर में अपने समान घटक द्रव्यों की वृद्धि करता है। आयुर्वेद में सामान्य और विशेष की यह कल्पना चिकित्सा कर्म के साथ–साथ सभी प्रक्रियाओं के मूलभूत आधार के रूप में की जाती हैं।

चित्र 1.1: आयुर्वेदिक औषधियां

1.2 आयुर्वेद की चिकित्सकीय विशेषज्ञता-

इसको एक साथ आयुर्वेद में अष्टांग आयुर्वेद के रूप में जानते है। जो नीचे दिया गया है–

1.	कायचिकित्सा	—	Body Treatment
2.	शल्य तन्त्र	—	Surgery
3.	शालाक्यतन्त्र	—	Opthalmology and Oto-Rhino-laryngology
4.	कौमारभृत्य एवं स्त्री रोग	—	Paediatrics, Obstetrics and Gynaecology
5.	भूतविद्या	—	Spectrology
6.	अगदतन्त्र	—	Toxicology

7. रसायनतन्त्र — Nutrition, rejuvenation and gerontology
8. वाजीकरण तन्त्र — Virilisation therapy

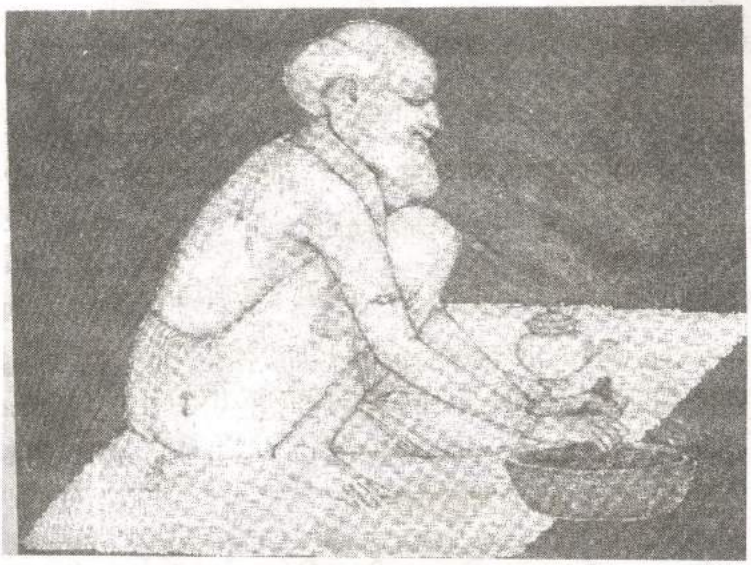

चित्र : 1.2 : औषधि निर्माण

1.3 आयुर्वेदिक औषध आधुनिक औषध से अलग कैसे-

आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक (आधुनिक) चिकित्सा की औषध के बीच मुख्य भिन्नताएं निम्न है:–

1. आयुर्वेद एक अनुभव विज्ञान है जबकि एलोपैथिक चिकित्सा एक प्रयोगात्मक विज्ञान है।
2. आयुर्वेदिक चिकित्सा एक आध्यात्मिक विचारधारा है जबकि आधुनिक चिकित्सा में अध्ययनात्मक विचारधारा है।
3. आयुर्वेद क्रिया–जनक विज्ञान है जबकि आधुनिक चिकित्सा संरचना या अंकों से सम्बन्धित विज्ञान है।
4. आयुर्वेदिक औषधियों का कोई विरोधिक प्रभाव, पार्श्व प्रभाव और विषाक्त प्रभाव नहीं होता है अगर ये उपयुक्त मात्रा में दी जाये, जबकि आधुनिक औषधियों को अगर उचित मात्रा में भी दिया जाये तो भी इनका विरोधिक प्रभाव, पार्श्व प्रभाव और विषाक्त प्रभाव होता है।
5. आयुर्वेद परीक्षण विधियाँ प्रथमतया रोगी परीक्षा के लिए केन्द्रित है। जबकि आधुनिक परीक्षण विधियाँ प्रथम रोग परीक्षा से जुड़ी हुई हैं।
6. आयुर्वेदिक चिकित्सा में वृक्षों के अन्दर का सार भाग प्रयोग किया जाता है जबकि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में केवल सक्रिय तत्व (alkaloid, glycosides) प्रयोग में लाये जाते हैं।

7. आयुर्वेद चिकित्सा में आधुनिक चिकित्सा की तुलना में संरक्षण एवं संवर्धन पक्ष ज्यादा मजबूत है।

चिकित्सा की परिभाषा

चिकित्सा को परिभाषित कर सकते हैं–

1. रोग को ठीक करने वाली आचारात्मक विधि को चिकित्सा कहते हैं।
2. अग्नि के विकृत कार्यों को सही रखना चिकित्सा है।
3. धातुसाम्य को बनाये रखना चिकित्सा है।
4. धातु और मल के बीच पोषण क्रम बनाये रखना चिकित्सा है।
5. चिकित्सक, औषध, परिचारक (नर्सिंग स्टाफ) और रोगियों के सक्रिय प्रयास से उपचार करना चिकित्सा है और ये चार प्रमुख कारक (चिकित्सा चतुष्पाद) हैं।

1.4 चिकित्सा के सिद्धान्त

आयुर्वेद के अनुसार रोग दोष–दूष्य के बीच प्रतिक्रिया (सम्मूर्छना) की अवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न होते है इसको रोग की सम्प्राप्ति के रूप में जानते हैं। इस प्रकार चिकित्सा का विषय दोष–दूष्य सम्मूर्छना को तोड़ना और साम्यावस्था को बनाये रखना है।

इस सामन्जस्य को बनाये रखने के लिए, चुनिंदा, प्राकृतिक उत्पादों जैसे अन्न एवं औषध के प्रयोग के लिए प्रकृति के नियम प्रयोग करते हैं। इन प्राकृतिक उत्पादों में जैविकतन्त्र में साम्यावस्था बनाये रखने की क्षमता होती है।

रोग की अवस्था में अगर शरीर में किसी विशेष घटक की कमी हो जाती है तो चिकित्सक साम्यावस्था को बनाये रखने के लिए उसके समान औषध, आहार और विहार का चयन करता है। इसी प्रकार, अगर शरीर में कुछ असमान्य रूप से बढ़ जाता है तो इसके विपरीत गुण वाले पदार्थ को ग्रहण करने से असामान्यता कम हो जाती है। इस प्रकार की चिकित्सा सामान्य–विशेष के सिद्धान्त पर की जाती है।

इस पृथ्वी पर सभी पदार्थ, साथ में आहार और औषधियां पांचभौतिक हैं। अर्थात् सभी द्रव्य पांचभौतिक हैं। पंचमहाभूतों के अंशांश कल्पना (पंचमहाभूतों के न्यून अधिक होने) के कारण द्रव्यों के गुण एवं प्रभाव भिन्न–भिन्न होते हैं। यह पंचभौतिक भिन्नता रस, गुण, वीर्य विपाक और प्रभाव के स्तर पर मान्य होती है।

रस	– Taste	गुण	– Physical properties
वीर्य	– Biological properties	विपाक	– Drug metabolism
प्रभाव	– Specific potency of drug		

इसलिए, उपरोक्त गुणों को जानने के बाद हम एक पदार्थ की प्रकृति का पांचभौतिक आकलन कर सकते है, और इस प्रकार से इसका प्रयोग जैविकतंत्र में चिकित्सकीय उद्देश्य के लिए दिये गये घटक द्रव्य को बढ़ाकर या घटाकर कर सकते हैं। इस प्रकार आयुर्वेद में औषधियाँ आधुनिक औषधि की तरह सिर्फ जीवाणु और विषाणुओं को मारने के लिए एक रासायनिक चिकित्सा अभिकर्त्ता नहीं है, बल्कि यह सूक्ष्मतम स्तर पर (molecular) कार्य करके जैविक तन्त्र में पोषणात्मक जरूरतों का सुधार करके साम्यावस्था का निर्माण करती है।

अन्त में चिकित्सा के सिद्धान्त नीचे दिये गये हैं:–

1. निदान परिवर्जन कारक – (Avoidances of etiological factors)

नैदानिक कारकों का त्याग–जैसे

- पाण्डु रोग में मृतिका भक्षण का परित्याग।
- मधुमेह में मधुर, तैलीय, गुरू आहार और दिवाशयन का परित्याग।
- कामला, अम्लपित्त और आमाशय व्रण में मद्य का परित्याग।
- पाचन संस्थान के विकारों में बिना उबला आहार द्रव्य और अशुद्ध पानी का परित्याग।
- श्वसन संस्थान के विकारों में धुआँ, धूल और धूम्रपान का परित्याग।

2. दोष (साम्य)–

दोष, धातु और मल के बीच साम्यता बनाये रखना। इस प्रकार की चिकित्सा को दोष विपरीत चिकित्सा भी कहते हैं।

आयुर्वेद मानता है कि रोग कुछ नहीं बल्कि दोषों, धातुओं और मलों की अस्थिरता की अवस्था है। यह साम्यावस्था चार उपायों द्वारा प्राप्त की जा सकती है:

1. अल्प दोषों को बढ़ाकर।
2. बढ़े हुए दोषों निकालकर।
3. प्रकुपित दोषों का शमन करके।
4. समदोषों का संरक्षण करके।

3. व्याधि विपरीत चिकित्सा–

रोग के विपरीत चिकित्सा

- शीतरोग में उष्ण चिकित्सा।
- उष्ण रोग में शीत चिकित्सा।
- तैल– वातिक रोगों में तैल का प्रयोग (In Neuromusculor Disorder)।
- घृत – पैत्तिक रोगों में घृत का प्रयोग (Metabolic disorder) ।
- मधु – कफज रोगों एवं चय विकार (Anabolic disorder) में शहद का प्रयोग।

5. **अग्निव्यापार बनाये रखना**– पाचन शक्ति और चयापचय को बनाये रखना।

शरीर में अग्नि (पाचन शक्ति और चयापचय ऊर्जा) को बनाये रखने के लिए आयुर्वेद में वर्णित आहार के नियमों का पालन करना चाहिए। इस विषय से संबन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु नीचे दिये गये हैं:–

- संतुलित आहार का प्रयोग जैसे– आहार में सर्वरस (सभी 6 रसों) का प्रयोग।
- निश्चित समय पर आहार लेना।
- अत्यधिक आहार का परिवर्जन।
- अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीत आहार द्रव्यों का परित्याग।
- मद्य का परित्याग।
- खाना खाते समय मानसिक विरोध का परित्याग।
- विरोधिक आहार द्रव्यों का परित्याग जैसे कि–
  - (i) मछली या अम्ल आहार के साथ दूध
  - (ii) सममात्रा में मधु और घृत
- ओज की स्थिति में सुधार और शरीर रोगप्रतिरोधक क्षमता।
- अपने आहार में नित्य दूध, घृत, आमलकी, अश्वगंधा, गुडुची इत्यादि का प्रयोग।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न - 1.1

रिक्त स्थानों को भरें –

1. आयुर्वेद में चिकित्सा का उद्देश्य ..... है।
2. आयुर्वेद एक ..... विज्ञान है।
3. व्यायाम ..... शारीरिक और ..... बल बढ़ाने के लिए निर्देशित है।
4. ..... के अंशांश कल्पना में भिन्नता के कारण ..... का गुण और प्रभाव अलग–अलग होता है।
5. रोगों के कारणों का परित्याग ..... कहलाता है।

निम्न का मिलान करें –

1.	प्रतिरोधक क्षमता	(क) मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य
2.	सद्वृत्त	(ख) रसायन
3.	पुनर्नवीकरण	(ग) सामान्य घटक

4. सामान्य (घ) शमन
5. प्रकुपित दोष (ड.) ओज

1.5 चिकित्सा के प्रकार-

आयुर्वेद में चिकित्सा दो वर्गों में विभाजित है।

1. नैष्ठिकी चिकित्सा
2. लौकिक चिकित्सा

1. नैष्ठिकी चिकित्सा–

यह व्यक्ति के देखरेख और उसके अन्तःकरण/मन से सम्बन्धित है। यह आयुर्वेद का आध्यात्मिक पक्ष है।

2. लौकिक चिकित्सा–

लौकिक चिकित्सा के अन्तर्गत व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक विकारों की चिकित्सा की जाती है। यह आयुर्वेद का चिकित्सीय पक्ष है।

लौकिक चिकित्सा को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) दैव व्यापाश्रय चिकित्सा (Astro-spiritual therapy)

(ख) सत्वावजय चिकित्सा (Psychotherapy)

(ग) युक्ति व्यापाश्रय चिकित्सा (Planned therapy)

(क) दैवव्यापाश्रय चिकित्सा

देव शब्द का प्रयोग दैव शक्ति या पवित्र शक्ति या पूर्वजन्म की घटनाओं के लिए होता है इसलिए यह कर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित है जैसे – व्यक्ति के पूर्वजन्म के कार्य और कर्म। इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा केवल उचित और पवित्र कर्मों के द्वारा की जा सकती है। पवित्र कर्म जैसे कि प्रार्थना, मंत्र, उच्चारण, उपवास, संतोष, तप, यम, मणियों का धारण इत्यादि दैव व्यापाश्रय चिकित्सा की सामान्य विधियाँ हैं। इस प्रकार की चिकित्सा ज्योतिष के कारकों के प्रतिफल के रूप में सामान्यतः की जाती है जैसे कि ग्रह और नक्षत्र। वर्तमान समय में चिकित्सा का यह पहलू ज्योतिषाचार्यों के द्वारा ज्यादा व्यवहार में उपयोग होता है यद्यपि यह प्राचीनकाल से ही आयुर्वेद का एक आवश्यक अंग है।

(ख) सत्वावजय चिकित्सा– (Psychotherapy)

आयुर्वेद में चिकित्सा का मनोवैज्ञानिक पक्ष इस कल्पना के द्वारा वर्णित है। यह आयुर्वेद की प्रमुख मनोचिकित्सा है। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है जो व्यक्ति के मन को अवास्तविकता से वास्तविकता की तरफ मोड़ता है। इसके लिए चिकित्सक आश्वासन, मनोभावों का

तात्विक परिवर्तन और मनो–प्रघात चिकित्सा विधि प्रयोग करते हैं।

- आश्वासन – अवसाद एवं चिंताजन्य विकारों में।
- मनोभावों का तात्विक परिवर्तन –भय की अवस्था में, अति उत्साह में, क्रोध और शोक इत्यादि में।
- मनो–प्रघात चिकित्सा – योषापस्मार (हीस्टीरिया) , पागलपन (इन्सैनिटी) , मनोविकार (साइकोसिस) इत्यादि में।

(ग) युक्तिव्यापाश्रय चिकित्सा–(Comprehensive Treatment)

यह चिकित्सा आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों पर की जाती है जैसे कि पंचमहाभूत का सिद्धान्त त्रिदोष, त्रिगुण, रस, गुण, वीर्य , विपाक और प्रभाव का सिद्धान्त एवं सामान्य और विशेष का सिद्धान्त। इसके अंतर्गत; अनेक भिन्न चिकित्साओं में से उपयुक्त चिकित्सा का चयन किया जाता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में सामान्यतः दो भाग शामिल हैं जो एक दूसरे के पूरक हैं :

(i) संशोधन चिकित्सा (Bio-purificatory)

(ii) संशमन चिकित्सा (Palliative measures)

पंचकर्म चिकित्सा आयुर्वेद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद्धति है। यह विशेषरूप से एक संशोधन प्रक्रिया है जो अनेक रोगों का उपचार करती है। आप पंचकर्म चिकित्सा पद्धति के बारे में अगले अध्याय में अध्ययन करेंगे।

पाठगत प्रश्न 1.2

(क) नीचे लिखे वाक्य सही हैं या गलतः

1. योग और ध्यान व्यापक चिकित्सा के मुख्य साधन है। ( )
2. दोषों का शमन विशिष्ट आहार, औषध और विहार के द्वारा किया जाता है। ( )
3. रोगों की रोकथाम के लिए टीकाकरण (vaccination) एक व्याधिविपरीत चिकित्सा का उदाहरण है। ( )

(ख) रिक्त स्थान भरें–

1. ..... वह ..... विधि है जो व्यक्ति के मन को अवास्तविकता से वास्तविकता की तरफ मोड़ता है।
2. आयुर्वेद में वृहत चिकित्सीय दृष्टिकोण को.....कहते हैं।
3. जैविक शोधन ..... पद्धति और इससे सम्बन्धित .....के द्वारा किया जाता है।

4. व्रण में मसालेदार और उत्तेजक आहार ..... का उदाहरण है।

5. ..... व्यक्ति के देखरेख और अन्तःकरण मन से सम्बन्धित है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने आयुर्वेद चिकित्सा के सिद्धांन्तों का अध्ययन किया। जिसका चिकित्सा विषय धातु साम्य है, जो कि दोष, धातु एवं मलों को साम्यावस्था में बनाये रखता है। आयुर्वेद यह मानता है कि रोग–दोष, धातु और मलों के असंतुलन की अवस्था है।

चिकित्सा का उद्देश्य है:–

- घटे हुए और अल्प दोषों को बढ़ाना।
- बढ़े हुए दोषों को बाहर निकालना।
- प्रकुपित दोषों का शमन।
- सामान्य दोषों का संरक्षण।

चिकित्सा प्रकृति से लिये गये उपयुक्त आहार, औषध और विहार के उपयोग के द्वारा सामान्य और विशेष के सिद्धान्त पर की जाती है। आयुर्वेदीय शास्त्रों के अनुसार सामान्य की परिभाषा यह है कि सामान्य द्रव्य जो बाहर से शरीर में लिए जाते हैं वे शरीर में अपने समान द्रव्यों की वृद्धि करते हैं। विशेष द्रव्य शरीर में अपने समान द्रव्यों को घटाते हैं। आयुर्वेद में सामान्य विशेष की यह कल्पना सभी क्रियाओं के मूलभूत आधार के रूप में विचारणीय है एवं साथ में चिकित्सा के दृष्टिकोण से भी हमने आयुर्वेद में चिकित्सा के प्रकार को जाना है।

हमने यह अध्ययन किया कि आयुर्वेद आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से कैसे अलग है और सफल चिकित्सा के सिद्धान्त का भी ज्ञान प्राप्त किया।

पाठांत प्रश्न

1. आयुर्वेदिक औषधि आधुनिक औषध से कैसे भिन्न है? इसका विस्तार से वर्णन करें।
2. आयुर्वेद की आधारभूत चिकित्सा का विस्तार से वर्णन करें।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें–

   (1) सद्वृत्त (2) दिनचर्या (3) धातु साम्य (4) आयुर्वेद की चिकित्सकीय विशेषताएं

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1 (क) 1. धातुसाम्य

2. अभ्यास

3. मानसिक, जैविक

4. आहार–औषध

5. निदान परिवर्जन

1.1 (ख) 1–5, 2–1, 3–2, 4–3, 5–4

1.2 (क) 1. गलत 2. सही 3. गलत

1.2 (ख) 1. सत्वावजय, मनोवैज्ञानिक

2. युक्तिव्यापाश्रय चिकित्सा

3. पंचकर्म, पद्धति

4. हेतुविपरीतार्थकारी

5. नैष्ठिकी चिकित्सा

2

मर्म चिकित्सा

मर्म चिकित्सा एक प्राचीन विज्ञान है जो अब पुन: प्रवर्तित किया गया है। यह शल्य विहीन और अनौषध चिकित्सा है। यह चिकित्सा शरीर में कुछ मर्म बिन्दुओं को उत्तेजित करके की जाती है। इस अध्याय में हम इसकी श्रेष्ठता के बारे में जानेंगे। शरीर के कुछ बिंदु जो कि नित्य स्वास्थ्य वर्धन के लिए उपयोगी होते हैं और कुछ सामान्य रोगों की चिकित्सा के लिए होते हैं उसकी विधि आप विशेषज्ञ से ही सीख पाऐंगे जो कि प्रशिक्षित होते हैं।

लक्ष्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात हम जानेंगे:-

- मर्म चिकित्सा की विशेषता और इसका कार्यक्षेत्र;
- इसके लक्षण की व्याख्या और यह कैसे कार्य करता है;
- नियमित स्वमर्म चिकित्सा के लिए और स्वास्थ्य संवर्धन के लिए इसकी विधियों का वर्णन;
- कुछ सामान्य रोगों की चिकित्सा के लिए इसकी विधियों और बिन्दुओं को उपलब्ध कराना;
- मर्म चिकित्सा का प्रायोगिक ज्ञान।

2.1 मर्म विज्ञान और मर्म चिकित्सा का कार्यक्षेत्र–

शरीर में मर्म स्थान शरीर में ऊर्जा को दर्शाते हैं जिसके द्वारा मनुष्य के शरीर में घाव भरने की शक्ति प्राकृतिक रूप से या ईश्वर के द्वारा प्रदान की जाती है।

यह मर्म चिकित्सा ऐसी प्रक्रिया के द्वारा की जा सकती है जिसके द्वारा हम बहुत सारे रोगों की चिकित्सा कर सकते हैं और स्वास्थ्य को सामान्य बनाये रख सकते हैं। पहले योगाभ्यास

आध्यात्म को प्राप्त करने का माध्यम था आजकल योग स्वास्थ्य संवर्धन का साधन और बहुत सारे रोगों को दूर करने का श्रेष्ठ मार्ग है जिनसे मनुष्य जूझ रहा है।

ठीक इसी प्रकार, मर्म चिकित्सा को लागू करके विभिन्न चिकित्सा और शल्य विकारों एवं आध्यात्म को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। मर्म चिकित्सा एक त्वरित, स्थायी और कम खर्चीली चिकित्सा पद्धति है।

2.2 मर्म विज्ञान कैसे काम करता है

शरीर में 107 मर्म बिन्दु (स्थान) हैं और इनको उत्तेजित करने से, ये मस्तिष्क के द्वारा शरीर की विभिन्न क्रियाओं को नियन्त्रित कर सकते हैं जैसा कि हम जानते है कि हम कीबोर्ड के द्वारा कम्प्यूटर में प्रोग्रामिंग कर सकते हैं एवं बल्ब और पंखे इत्यादि को चलाने के लिए हम स्विचबोर्ड के स्विच को चालू करते हैं, ठीक उसी तरह हम संपूर्ण शरीर में वितरित मर्म स्थानों को उत्तेजित करके शरीर के विभिन्न भागों के कार्यों को उत्तेजित और नियंत्रित कर सकते हैं। मर्म बिंदु बाह्य स्तर के चिह्न नहीं है, ये महत्वपूर्ण क्रियात्मक एवं रचनात्मक संरचनायें हैं। ये शरीर में मर्म स्थान हैं। जब ये उत्तेजित किये जाते हैं तो ये स्वास्थ्य को बनाये रखते हैं और रोग को ठीक करते हैं। जब शरीर पर चोट लगती है तो यह शरीर/मन को कभी ज्यादा और कभी कम हानि पहुंचाते हैं।

2.3 संरचना तथा स्थिति एवं मर्म स्थान को उत्तेजित करने की विधियां–

मर्म बिंदुओं को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। लेकिन चिकित्सा के लिए, हमें शारीरिक संरचना (शरीर अंग और उनके संयोग) एवं आघात जो कि मर्म स्थानों के चोटिल होने के कारण हो सकते हैं, की जानकारी होनी चाहिए।

2.4 मर्म स्थान पांच शरीर तत्वों से मिलकर बना है–

(i) स्नायु (Ligaments)

(ii) मांस (Muscles)

(iii) सिरा (Blood vesseles)

(iv) अस्थि (Bones)

(v) संधि (Joints)

एक शारीरिक तत्व की प्रधानता विशिष्ट वर्गीकरण को इंगित करती है। स्थान निर्धारण के अनुसार मर्म बिंदुओं (स्थानों) की महत्ता एक मर्म विद्यार्थी को जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दृष्टान्त के लिए, जो मर्म बिन्दु जत्रु के ऊपर (गर्दन और शिर) में स्थित होते हैं वे बहुत

संवेदनशील होते हैं। इसलिए हमें चिकित्सा के दौरान किसी अभूतपूर्व प्रभाव के लिए उचित देखरेख करनी चाहिए। स्थान निर्धारण का अर्थ शरीर का अङ्ग है। इसको हम उर्ध्वजत्रु (गर्दन के ऊपर), उर्ध्वशाखा (हाथ, अग्रबाहु, उर्ध्वबाहु) और अधोशाखा (पैर, जंघा और उरु), वक्ष उदर और पृष्ठ, साथ में वक्ष प्रदेश में विभाजित कर सकते हैं। मर्म बिन्दुओं (स्थानों) की स्थिति के लिए भी यहां अपने शरीर अङ्गों जैसे–अष्ट अंगुल से गुल्फ में स्थित मर्मों एवं चार अंगुल से अन्य मर्म बिन्दुओं को मापते हैं। ये सब एक शिक्षक से सीखना चाहिए। कुछ महत्वपूर्ण मर्म बिन्दु जो आप इस अध्याय में जानोगे, यहां पर चित्र में रेखांकित किये गये है:–

मर्म चिकित्सा दबाव का प्रयोग करके, कम्पन, चुभोकर या गर्म और ठण्डे लेप का प्रयोग करके, तैल और मलहम का मर्म स्थान पर अपने आप या दूसरे व्यक्ति के द्वारा प्रयोग करके दी जाती है। ये विधियों विभिन्न स्थानों के लिए भिन्न-भिन्न हैं। सिरा मर्म बहुत कोमल स्थान है। हमें इन स्थानों पर दबाव नहीं देना चाहिए। इन स्थानों पर केवल मर्दन तथा लेप एवं तैल का प्रयोग करना चाहिए। जो स्थान उर्ध्वशाखा (अग्रबाहु, उर्ध्वबाहु और हस्त), अधोशाखा

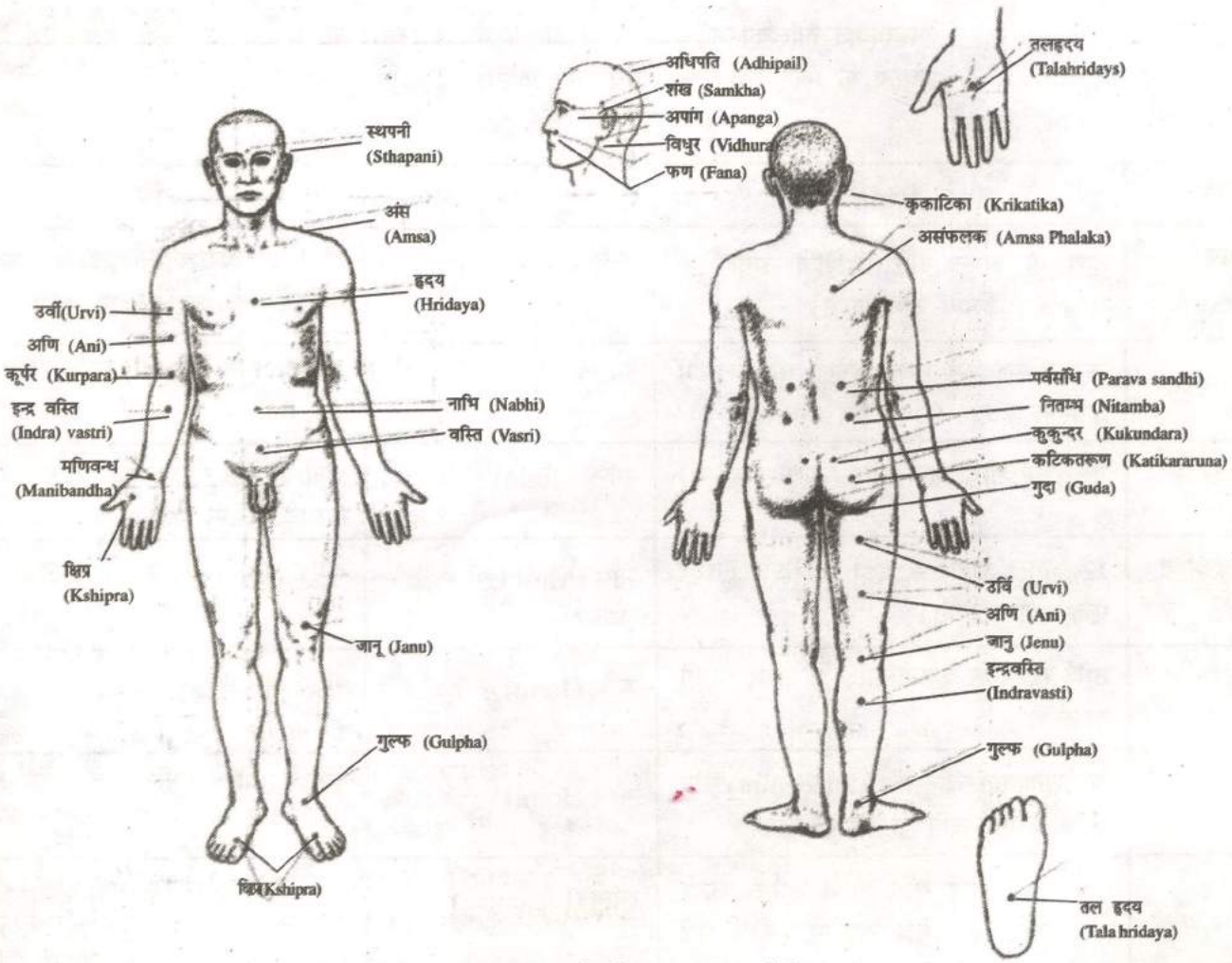

चित्र 2.1 : मानव शरीर में कुछ मुख्य मर्म बिंदु

(उरु, पैर, और जंघा) पर स्थित होते हैं उन्हें ध्यानपूर्वक जोर देकर दबा सकते हैं। पृष्ठ के कुछ मर्म स्थानों के उप-त्वचीय ऊत्तकों और ऊपरी त्वचा को दबाव द्वारा और चुभोकर करते हैं। उप-त्वचीय स्नायु और तंत्रिकाएं कम्पन प्रक्रिया द्वारा उत्तेजित की जा सकती है। दूसरे बिन्दुओं (स्थानों) पर दबाव सामान्यत: अंगुष्ठ और अंगुलियों के माध्यम से डाला जाता है। इस अवस्था में दबाव को दीर्घकाल या लम्बे समय तक नहीं देना चाहिए; **उदाहरण–अंगुष्ठ दबाकर नहीं रखना चाहिए, बल्कि एक लय में हृदय स्पन्दन की तरह दबाना चाहिए।**

चन्दन का लेप, हल्दी का लेप, औषधीय तैल एवं मलहम (प्रलेप) सामान्यत: नाभि, गुदा, गर्दन और सिर में प्रयोग करना चाहिए। पंचकर्म चिकित्सा में, शिरोधारा मस्तक और कपाल पर प्रयोग करते हैं, जिसके द्वारा हम मस्तक और कपाल पर स्थित मर्म स्थानों पर बूंद-बूंद औषधीय तैल के द्वारा चिकित्सा करते हैं।

मर्म चिकित्सा में किसी अन्य उपकरण जैसे–पेन्सिल, डण्डे, पिन, सुईयां, बीजों का प्रयोग नहीं किया जाता हैं।

निम्नांकित तालिका में, आप शरीर अङ्ग के साथ मर्म की स्थिति और कुछ महत्त्वपूर्ण मर्म स्थानों के लिए चिकित्सा विधि जान पाएंगे।

ाम	स्थिति	शरीर तत्व	विधि
क्षिप्र	हाथ के अंगूठे और प्रदेशिनी अंगुल के मध्य (उर्ध्व एवं अधोशाखा)	स्नायु (ligament)	अंगूठे और प्रदेशिनी अंगुली से दबाव या प्रदेशिनी अंगुली द्वारा कम्पन
तलहृदय	करतल मध्य में मध्य अंगुली की रेखा में ऊपर की ओर (उर्ध्व एवं अधोशाखा)	मांस (Muscle)	अंगुष्ठ और प्रदेशिनी अंगुली (Index finger) से दबाव
गुल्फ	गुल्फ के नीचे दोनों ओर (अधोशाखा में)	सन्धि (Joint)	दोनों अंगुष्ठों से विपरीत अवस्था से कम्पन उत्पन्न करना
इन्द्रवस्ति	12 अंगुल पार्श्व में एड़ी की ओर (उर्ध्व एवं अधोशाखागत)	मांस (Muscle)	अंगूठे एवं अंगुलियों से दबाव
कूर्पर	उर्ध्व शाखागत कुहनी संधि के ऊपर किसी तरफ	संधि (Joint)	अंगूठे एवं अंगुलियों से दबाव
ानु	अधोशाखागत-जानुसंधि (knee joint) जानु के नीचे एवं जानु के किसी तरफ	संधि (Joint)	करतल और अंगुलियों द्वारा दबाव
अणि	कूर्पर और जानु संधि से 4 अंगुल ऊपर दोनों तरफ बाहु एवं ऊरु में (उर्ध्व एवं अधोशाखागत)	स्नायु (Ligament)	अंगूठे एवं अंगुलियों द्वारा दबाव

उर्वी	अणि के ऊपर बाहु और ऊरु में 4 अंगुल पार्श्व में (उर्ध्व एवं अधोशाखागत)	सिरा (Blood Vessel)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों से दबाव
नाभि	पक्वाशय एवं आमाशय के मध्य में सिराओं के उत्पत्ति स्थान पर स्थित	सिरा (Blood vessel)	तैल का प्रयोग
कुकुन्दर	पृष्ठ	संधि (Joint)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों से दबाव
पार्श्वसन्धि	पृष्ठ	संधि (Joint)	दबाव/चुभाना
वृहती	पृष्ठ	संधि (Joint)	दबाव/चुभाना
अंसफलक	पृष्ठ	अस्थि (Bone)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों से दबाव
अंस	कंधा	स्नायु (Ligament)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों से दबाव
कृकाटिका	गर्दन (ग्रीवा)	संधि (Joint)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों द्वारा मर्दन या सामान्य दबाव
विधुर	कान के पीछे	स्नायु (Ligament)	अंगुष्ठ द्वारा दबाव
फण	नाक के आधार पर दोनों तरफ	सिरा (Blood vessel)	कनिष्ठिका अंगुली के अग्रिम पर्व द्वारा दबाव
अपांग	भ्रूपुच्छों के अंत में नीचे आंखों के बाहर की ओर	सिरा (Blood vessel)	प्रदेशिनी अंगुली द्वारा (Index finger) दबाव
आवर्त	कान के ऊपर गण्डस्थि पुनः कपाल एवं जबुकास्थि के संधि स्थान पर स्थित (At junction of frontal, molar and sphenoid bone)	स्नायु (Ligament)	अंगुष्ठ एवं अंगुलियों द्वारा दबाव
शंख	भौंहों के पुच्छान्त के ऊपर कान और ललाट के बीच	अस्थि (Bone)	अंगुलियों द्वारा दबाव
स्थपनी	दोनों भौंहों के बीच	सिरा (Blood vessel)	अंगुठे और मध्यमा अंगुली द्वारा दबाव/चंदन का लेप/कुकुम और सिंदुर का प्रयोग
सीमान्त	बालों के बीच मांग में	संधि (Joint)	अंगुलियों द्वारा दबाव जहाँ औरत सिर में कुंकुम/सिंदुर का प्रयोग करती है।
अधिपति	सिर के पिछले भाग में जहां जूड़ा बनाते हैं	संधि (Joint)	अंगूठे और अंगुलियों द्वारा दबाव/जल, क्वाथ या औषधीय तेल द्वारा सिंचन

2.5 स्वमर्म और सामान्य रोगों के लिए चिकित्सा

मर्म चिकित्सा को विस्तार से 3 भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(क) स्वमर्म शरीर में पुनः ऊर्जा एवं कार्यकलापों के कारणों की चिकित्सा के लिए।

(ख) सामान्य रोगों के लिए चिकित्सा।

(ग) गंभीर रोगों के लिए चिकित्सा।

इस अध्याय में, हम प्रथम दो अनुभागों पर विचार विमर्श करेंगे जबकि तीसरा अनुभाग प्रशिक्षित चिकित्सक या प्रशिक्षित चिकित्सक के देखरेख में अभ्यास करने वाले के लिए जरूरी है।

(क) स्वमर्म चिकित्सा

स्वास्थ्य के संरक्षण तथा अनुरक्षण के लिए स्वमर्म चिकित्सा का अभ्यास किसी के द्वारा भी किया जा सकता है और यह किसी को भी सिखाई जा सकती है। सिर, उर्ध्वशाखा और अधोशाखा के मुख्य बिंदुओं को स्वमर्म चिकित्सा द्वारा पुर्जावान किया जा सकता है।

निम्नांकित बिंदुओं (स्थानों) को 10-15 बार, दिन में एक बार या दो बार अभ्यासकर्ता द्वारा स्वतः/दूसरों के द्वारा दबाना जरूरी है।

शिर–अधिपति, विधुर, अपांग, स्थपनी और फण।

उर्ध्वशाखागत–उर्वी अणि, कूर्पर, इन्द्रवस्ती, क्षिप्र, तलहृदय।

अधोशाखागत–जानु, इन्द्रबस्ति, गुल्फ, क्षिप्र, तलहृदय।

पृष्ठगत–कुकुन्दर, अंस।

यहां हम पूर्व-अभ्यास प्रक्रियाओं पर विचार करेंगे: जैसे–

(i) स्थिति–बैठने की स्थिति, सुखासन, पदमासन।

(ii) गहरी श्वास के व्यायाम द्वारा शिथिलता।

(iii) सम्पूर्ण शरीर एवं मर्म स्थानों की जानकारी (जागरूकता)।

(iv) मर्म स्थानों की सामान्य मालिश।

सामान्य रोग और सम्बद्ध बिंदु–

इन प्रक्रियाओं के बाद, स्वमर्म चिकित्सा की जा सकती है। मर्म बिंदुओं को उत्तेजित करने के बाद, मर्म बिंदुओं का पुनः सामान्य मर्दन कर देना चाहिए। वैकल्पिक रूप से, बादाम तैल या औषधीय तैल स्वःमर्म चिकित्सा अभ्यंग के बाद के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

स्त्री के लिए, शरीर के बायीं ओर से चिकित्सा शुरू करना चाहिए।

पुरुष के लिए, चिकित्सा शरीर के दाहिने भाग से शुरू करनी चाहिए।

निम्नांकित सामान्य व्याधियों के निम्नांकित 20 से 30 मर्म बिंदुओं को दिन में 2 बार उत्तेजित करके रोग अवस्था को शान्त किया जा सकता है। कुछ व्यक्तियों में तत्काल प्रतिक्रिया हो सकती है तो कुछ को ठीक होने में दिन या सप्ताह लग सकते हैं। यह व्याधि के प्रकार और उसकी गंभीरता पर निर्भर करता है।

सामान्य रोगों की तालिका और संबंधित बिंदु

मधुमेह	*कूर्पर (अंगूठे व अंगुलिया से दबाव)*
उच्चरक्तचाप -	तलहृदय (उर्ध्व व अधोशाखा) पर दवाब दें।
मिर्गी और योषापस्मार (हीस्टीरिया)	तलहृदय–सामान्य चिकित्सा में उर्ध्वशाखा एवं अधोशाखा टिप्पणी–रोग के दौरे के समय इन बिंदुओं पर दबाव रोगों को जल्दी ठीक करता है और रोगों के लक्षण कम होते हैं।
आटोप/अम्लपित्त, पेट में दर्द एवं आमाशय-आंत में दर्द	कूर्पर (दोनों तरफ के), दोनों बाहु पर दवाब दें।
गृध्रसी	अधोशाखा–क्षिप्र, गुल्फ, इन्द्रबस्ति, जानु, कुकुन्दर।
अंङ्गघात	उर्ध्व एवं अधोशाखा के सभी मर्म प्रभावित अंग के स्थिति के आधार पर।
मन्यास्तम्भ (सवाईकल स्पान्डलाइटिस)	उर्ध्वशाखा–क्षिप्र, कूर्पर, अणि, उर्वी, अंस।
अंस संधिजाड्य	उर्ध्वशाखा–क्षिप्र, कूर्पर, अणि, उर्वी, अंस।
वेदना युक्त संधि (जानु) के रोग जैसे–सन्धिवात	अधोशाखा–क्षिप्र, गुल्फ, इन्द्रबस्ति, जानु।
आम वात	अधोशाखा/उर्ध्वशाखा के सभी मर्म शरीर के प्रभावित अंग की स्थिति पर निर्भर करते हैं।
अर्धावभेदक (माइग्रेन)	अंस, अपांग, आवर्त (दोनों तरफ के)।
नेत्ररोग	अपांग, आवर्त (दोनों तरफ के)।
मूत्रविकार	इन्द्रबस्ति (उर्ध्वशाखा और अधोशाखा), गुल्फ।

नोट–ऊपर सारणी में, प्रत्येक रोगों के लिए विशिष्ट स्थान दिये गये हैं। लेकिन प्रारंभ में, (प्रथम कुछ सत्रों के लिए), शरीर के उस भाग में उपस्थित सभी मर्म स्थानों जैसे उर्ध्वशाखा या अधोशाखा, की चिकित्सा करनी चाहिए और शरीर के विपरीत भाग जैसे–अगर शरीर का वाम भाग प्रभावित हो तब दोनों तरफ बाएं एवं दाएं, लगातार चिकित्सा करनी चाहिए।

मर्म चिकित्सा की विधि के प्रयोग के लिए कुछ बिंदुओं को याद रखें–

- मर्म चिकित्सा मुख्य रूप से रोगी को कठोर सतह पर लिटाकर (lying down position) या बिठाकर (sitting position) देनी चाहिए।
- रोगी के आयु, रोग और रोगी की दर्द सहने की क्षमता एवं मर्म स्थान के प्रकार के अनुसार दबाव में भिन्नता होनी चाहिए।
- गहरी श्वास या वार्तालाप एवं आश्वासन द्वारा ध्यान बंटाकर उपचार के दौरान होने वाली पीड़ा को कम किया जा सकता है।
- कम दवाब से शुरु करे धीरे-धीरे दवाब बढाएं जितना रोगी सहन कर सके।
- अगर वहां पर शोथ (सूजन) है तो वहां पर अत्यधिक दर्द होगा।
- अगर कोई मर्म स्थान चिकित्सा के समय कोमल हो जाये, तब तत्काल मर्म स्थानों को ऊपर एवं नीचे उत्तेजित करने से यह दर्द कम हो जायेगा।
- हम यह कैसे जानेंगे कि हम इससे प्रभावित है? रोगी द्वारा प्रारंभिक अवस्था में दबाव वाले स्थान पर दर्द महसूस होगा।
- अगर शरीर के एक तरफ घाव उपस्थित है तो सर्वप्रथम विपरीत भाग की चिकित्सा शुरू करें और बाद में प्रभावित अंग का उपचार करें।
- चिकित्सा द्वारा मर्म चिकित्सा शुरू करने से पहले रोगी के निदान के विषय में जानना चाहिए।

आवश्यक सावधानियां

रोग अवस्था में मर्म चिकित्सा देने से पूर्व कुछ सावधानियां रखना परम आवश्यक है–

- जहां मर्म चिकित्सा में उचित सावधानियां और प्रक्रिया अपनायी जाती है तो वहां न तो गंभीर और ना ही बारम्बार दुर्घटनाएं व जटिलताएं सामने आती हैं।
- स्वमर्म चिकित्सा की दैनिक प्रक्रिया में, दुर्घटना असामान्य है। लेकिन अगर मर्म चिकित्सा दूसरे व्यक्ति द्वारा दी जाती है तो अनुभव की कमी, मर्म प्रकार की अनदेखी, मर्म बिन्दु पर आवश्यकता से अधिक दबाव के कारण दुर्घटना हो सकती है।
- उन सभी अवस्थाओं में जहां कोई जटिलता उत्पन्न होती है जैसे–चक्कर आना, वमन, शरीर के अंगों का शून्य होना, तीव्र दर्द, अचेत अवस्था में, तत्काल चिकित्सा सहायता की जरूरत होती है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. दो से ज्यादा मर्म स्थानों की पहचान करें और शरीर में स्थिति बताएं।

.....

.....

2. मर्म चिकित्सा के दौरान की जाने वाली दो सावधानियां को लिखें।

.....

.....

नोट–मर्म चिकित्सा के समय दुर्घटना से बचने के लिए निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. हमें मर्म चिकित्सा मर्म विज्ञान के विशेषज्ञ की देखरेख में प्रायोगिक प्रशिक्षण के साथ सीखना चाहिए।

2. हर मर्म की शारीरिक संरचना को ध्यान में रखना चाहिए और उसी के अनुसार दबाव देना चाहिए। उदाहरण के लिए सिरा मर्म की चिकित्सा अस्थि मर्म के जैसे नहीं करनी चाहिए। सन्धि, अस्थि, मांस, स्नायु मर्म पर अधिकतम दबाव देना चाहिए। लेकिन सिरा मर्म को जोर से नहीं दबाना चाहिए। हल्का मर्दन उर्ध्व (ऊपर) अधो (नीचे की ओर) और बीच से किनारे की ओर सिरा मर्म के स्थान पर मर्दन करना चाहिए। सिरा मर्म के ऊपर कोई भी अतिरिक्त दबाव देने पर उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। विशेष रूप से सिर और गर्दन के मर्म की चिकित्सा ध्यानपूर्वक और साधारण रूप से करनी चाहिए। धारा, रगड़ना, साधारण स्पर्श, साधारण दबाना और हटाना, औषधीय तैल का प्रयोग, लेप इन मर्मों की चिकित्सा की विधियां हैं।

3. मर्म चिकित्सा के दौरान रोगी की स्थिति

रोगी कठोर आसन पर बैठा, सीधा या खड़ा और लेटी हुई अवस्था में होना चाहिए। विशेषरूप से गम्भीर अवस्था में मर्म चिकित्सा लेटे हुए अवस्था में देनी चाहिए। गंभीर ग्रीवा व्रण के कुछ मामलों में, बैठे अवस्था में उर्ध्वशाखा के मर्मों पर दबाव देने पर गम्भीर रूप से चक्कर आना, वमन, मिचली और अचेत अवस्था हो सकती है। यह स्त्री रोगियों में सामान्यत: ज्यादा होती है। मर्म चिकित्सा के समय हमें रोगी के चेहरे के भावों पर निगरानी रखनी चाहिए। जब रोगी तीव्र दर्द और बेचैनी महसूस करे तब मर्म स्थान पर दबाव का प्रयोग तत्काल हटा लेना चाहिए। स्वस्थ होने के लिए तत्काल चिकित्सकीय सहायता या निम्नलिखित उपायों की जरूरत होती है।

(i) रोगी को तत्काल अधोमुख स्थिति (Recumbent position) में बिस्तर पर लिटाना चाहिए।

(ii) पैर को उठाएं और सिर को नीचे रखने की कोशिश करें।

(iii) उचित संवातन (Ventilation) को बनाये रखना चाहिए।

(iv) हथेली और तलवों को रगड़ते हुए तलहृदय मर्म प्रक्रिया को आरंभ करें।

(v) गर्दन के दोनों तरफ साधारण रूप से ऊपर की तरफ मर्दन करना चाहिए।

गर्भवती स्त्री के मामले में, हमें रोगों के लिए मर्म चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। गर्भवती स्त्री स्वयं अपने स्वास्थ्य वर्धन के लिए स्वमर्म चिकित्सा कर सकती है।

ऊपर वर्णित सावधानियों का अनुसरण करके, हम मर्म और मर्म चिकित्सा के प्रभावपूर्ण विज्ञान के लाभों का सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं।

आपने क्या सीखा:

इस अध्याय में, हमने मर्म चिकित्सा के बारे में सीखा। कुछ मर्म स्थान शरीर में होते हैं। चिकित्सा प्रदान करने के लिए मानव शरीर के कुछ मर्म बिन्दुओं, स्वास्थ्य संवर्धन के लिए नियमित स्वमर्म चिकित्सा और कुछ सामान्य रोगों के उपचार की तकनीकों और इनके दौरान अपनाई जाने वाली सावधानियों तथा कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना चाहिए। अब हम यह समझ चुके है कि शरीर में मर्म स्थान महत्त्वपूर्ण ऊर्जा को दर्शाते है जिसके माध्यम से मनुष्य शरीर में स्वत: व्रणरोपण शक्ति का निर्माण प्रकृति द्वारा या ईश्वर द्वारा उत्तेजित हो सकता है।

यह प्रक्रिया मर्म चिकित्सा द्वारा कर सकते है जिसके द्वारा हम बहुत सारे रोगों की चिकित्सा कर सकते है और स्वास्थ्य को सामान्य बनाये रख सकते है।

पहले योगाभ्यास आध्यात्मिकता या आध्यात्म को प्राप्त करने का माध्यम था। अब योग, स्वास्थ्य संवर्धन के लिए साधन है और ज्यादातर रोगों को दूर करने का मार्ग, जिसको प्राणी या मनुष्य सहन करता है। ठीक उसी प्रकार, मर्म चिकित्सा करना विभिन्न औषधीय एवं शल्य विकारों में एवं आध्यात्म को प्राप्त करने में सहायक होती है।

मर्म चिकित्सा एक तत्कालीय, स्थायी और सस्ता चिकित्सा का माध्यम है।

पाठांत प्रश्न

1. मर्म चिकित्सा के कार्य क्षेत्र पर विचार करें।
2. मर्म चिकित्सा में सावधानियों पर विचार करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1.

नाम	स्थिति	शरीर अवयव	विधि
क्षिप्र	करतल और प्रदेशिनी अंगुल के बीच (उर्ध्व एवं अद्योशाखा)	स्नायु (Ligament)	अंगुठे और प्रदेशिनी अंगुली से दबाव/प्रदेशिनी अंगुली से कंपन
तलहृदय	करतल मध्य में, मध्य अंगुली की रेखा में ऊपर की ओर (उर्ध्वशाखा)	मांस (muscle)	अंगुठे और प्रदेशिनी अंगुली से हथेली पर दबाव
गुल्फ	अधोशाखा-गुल्फ संधि के दोनों तरफ	संधि (Joint)	अंगुष्ठ को विपरीत दिशा में रखकर नाखून से कम्पन

2.

आवश्यक सावधानियां–

रोग अवस्था में मर्म चिकित्सा देने के लिए कुछ सावधानियां परम आवश्यक हैं–

- मर्म चिकित्सा में जहां पूर्णरूप से सावधानियों और प्रक्रियाओं का अनुसरण किया जाता है वहां दुर्घटना और जटिलता नहीं के बराबर होते है।
- स्वमर्म चिकित्सा की दैनिक प्रक्रिया में दुर्घटना असामान्य है लेकिन अगर मर्म चिकित्सा दूसरे व्यक्ति द्वारा दी जाती है तो, अनुभव की कमी, मर्म प्रकार की अनदेखी, मर्म बिन्दु पर आवश्यकता से अधिक दबाव के कारण दुर्घटना हो सकती है।

3

परिवार कल्याण

चीन के बाद भारत ही विश्व में दूसरा सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश है। अनियन्त्रित और तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण भारत ने 11 मई 2000 को '1 अरब' की जनसंख्या को पार कर लिया था। निकट भविष्य में इस प्रवृत्ति के द्वारा, भारत संपूर्ण विश्व में जनसंख्या में प्रथम स्थान प्राप्त कर लेगा।

परिवार कल्याण प्रजनन क्षमता को नियंत्रित करने का साधन और उपाय प्रदान करता है। यह जन्म अंतराल और जन्म नियंत्रण के लिए विभिन्न विधियों का भी प्रावधान करता है। यह मातृ और शिशु स्वास्थ्य को सुधारने में सहायता और नपुंसकता की चिकित्सा में भी सहायता करता है।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:-

- आयुर्वेद में परिवार कल्याण की अवधारणा;
- वर्तमान जीवन शैली में आयुर्वेद के माध्यम से परिवार कल्याण के महत्त्व और जरूरत को समझना;
- परिवार नियोजन की विधियों को जानना;
- जन्म अंतराल की महत्ता को पति-पत्नी को समझने में सहायता करना;
- पति-पत्नी को अपनी जरूरत के हिसाब से उपर्युक्त परिवार नियोजन विधि चुनने में मार्ग दर्शन करना;
- परिवार नियोजन सेवाओं के बारे में समुदाय को शिक्षित करना और जागरुकता पैदा करना।

3.1 परिवार कल्याण–

एक स्वस्थ बच्चे के सुरक्षित प्रसव के लिए निम्नांकित कारक जिम्मेदार होते है: शुक्राणु की स्वस्थता, अण्डाणु और स्त्री सेक्स हार्मोंस, गर्भाशय, गर्भधारण काल, गर्भावस्था काल, प्रसव काल, प्रसव पश्चात काल साथ में सही समय पर भ्रूण में आत्मा का प्रवेश। इसके अतिरिक्त, गर्भवती स्त्री के लिए बताए गये आहार क्रम और जीवनशैली का भी सामान्य रूप से अनुसरण करना चाहिए।

नियम अनुसार इच्छित फल की प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुष को ऋतुकाल में संभोग करना चाहिए। (ऋतुकाल-मासिकधर्म शुरू होने के 12 दिन बाद, यह अण्डाणु उत्पत्ति काल है)। आयुर्वेद की विभिन्न संहिताओं में गर्भनिरोध की अवधारणा भी मिलती है। इसमें औषधियां और अन्य गर्भस्राव के साधन भी वर्णित है।

उच्च मातृ मृत्युदर (प्रति वर्ष प्रति हजार जीवित शिशुओं में मातृ मृत्यु संख्या) का कारण पाण्डु (Anaemia) और प्रसवोत्तर रक्तस्राव एवं बहुत सारे बच्चों का जन्म होना है। प्रत्येक गर्भावस्था के साथ यह खतरा बढ़ता जाता है। गर्भावस्था के समय मातृ मृत्यु का ज्यादा खतरा उच्च रक्तचाप के कारण होता है, जो गर्भावस्था के दौरान विषाक्तता उत्पन्न करता है। गैरकानूनी असुरक्षित गर्भपात, संक्रमित गर्भपात और असुरक्षित प्रसव ज्यादातर अप्रशिक्षित दाइयों के द्वारा कराने से मृत्युदर का खतरा बढ़ जाता है।

जिन औरतों को गर्भधारण 18 वर्ष के पहले और प्रथम गर्भधारण 35 वर्ष के बाद होता है, उनके प्रसव में जटिलताओं का खतरा अधिक होता है।

अनचाहें गर्भों से प्रेरित गर्भपात, गर्भ निरोध की आवश्यकता को दर्शाता है।

ज्यादातर शिशु मृत्यु जन्म की कुछ हानिकारक विधियों, खराब टीकाकरण की स्थिति, एवं टीकाकरण (Immunization) के बारे में जानकारी न होना, अतिसार और तीव्र श्वास के संक्रमण जैसे–श्लेष्मिक ज्वर इत्यादि के कारण होता है। आयुर्वेद के माध्यम से अच्छे परिवार कल्याण कार्यक्रमों के द्वारा इनको रोका जा सकता है।

आयुर्वेद के माध्यम से परिवार कल्याण की अच्छी सेवाओं द्वारा गर्भावस्था संबंधित कारणों से मातृ और शिशु मृत्यु दर को रोका जा सकता है उदाहरण–गर्भिणी परिचर्या द्वारा गर्भवती स्त्री की देखभाल, मासिक आहारक्रम एवं जटिलता रोकने की औषधियां, नवें महीने में सूतिकागार में देखभाल जब तक प्रसव न हो जाय, यह प्रसव 3 या 4 अनुभवी स्त्रियों द्वारा कराया जाय जिन्हें गर्भवती स्त्री के साथ में रहने का अच्छा अनुभव हो और जो उसके मनोविज्ञान का विकास करें, विशेष रूप से बन्ध्या अवस्था में अनुभवी महिला वैद्या द्वारा प्रसव कराएं।

कुमारागार (नर्सरी) में सूतिका परिचर्या (प्रसव-पश्चात देखभाल), नवजात शिशु परिचर्या (नवजात शिशु की देखभाल), जातकर्म द्वारा प्रसव पश्चात शिशु की देखभाल और रक्षाकर्म भी उपलब्ध हो।

अपेक्षित छोटे परिवार के मानक के लिए परिवार नियोजन परिवार में बच्चों की संख्या सीमित रखना और साक्षरता स्तर को बढ़ाने के लिए भी जोर देता है।

इसके अंतर्गत निम्नांकित बिंदु हैं–

- गर्भनिरोध और सुरक्षित संभोग के द्वारा अनचाहे गर्भ का परिहार।
- विभिन्न उपायों, कर्मकाण्डों एवं आहार क्रमों के माध्यम से शिशु जन्म की योजना।
- दो गर्भधारण के बीच अंतराल।
- परिवार में बच्चों की संख्या निश्चित करना।

3.2 परिवार कल्याण की अवधारणा सुनिश्चित करना

परिवार कल्याण, शिशु अतिजीविता और सुरक्षित मातृत्व को निम्न के द्वारा प्रदान किया जा सकता है–

1. रजस्वलाचर्या (मासिक धर्म के समय देखभाल और मासिक विकारों की रोकथाम)
2. ऋतुमतीचर्या (अण्डाणुत्याग काल के समय स्त्री की देखभाल यह 12 दिन का काल, (मासिक स्राव के 3 से 7 दिन बाद का काल) इस काल के समय क्षार, नस्य कर्म और वमन कर्म का प्रयोग ऋतुमती के लिए वर्जित है।
3. पुरुष और स्त्री के लिए विवाह की न्यूनतम आयु क्रमशः 25 वर्ष और 18 वर्ष है।
4. गोत्र शादियां–शादी करने वाले स्त्री-पुरुष का गोत्र अलग-अलग होना चाहिए।
5. जन्म अंतराल बह्मचर्य द्वारा और गर्भनिरोध द्वारा।

इच्छित फल की प्राप्ति विभिन्न विधियों एवं उपायों जैसे आहार क्रम और गर्भधारण के लिए उपर्युक्त दिनों के चयन के माध्यम से कर सकते हैं।

3.3 मातृशिशु देखभाल–

मातृ शिशु परिचर्या जीवन शैली, व्यवहार और आहारक्रम में क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए। इसको गर्भिणी परिचर्या कहते हैं। सूतिकागार में नवें महीने से प्रसव तक लिखा हुआ आहार लेना चाहिए।

1. गर्भावस्था के दौरान माता की देखभाल (ANC) और अत्यधिक खतरे वाली मांता की पहचान, जैसे–शार्ट स्टेचर, प्री-इक्लेक्टिसया, इकलेम्प्सिया, जुड़वा गर्भ, और 18 वर्ष से पहले या 35 वर्ष की आयु के बाद गर्भवती होना इत्यादि। गर्भावस्था के छठे महीने में गोक्षुर से सिद्ध औषधीय घृत के प्रयोग द्वारा प्रीक्लेम्पिसिया का निवारण करते है।

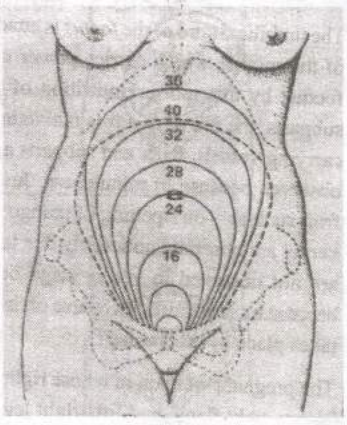

चित्र 3.1 : मासानुमासिक गर्भ की स्थिति

2. सूतिकागार में प्रशिक्षित महिला द्वारा स्वच्छ एवं सुरक्षित प्रसव।

3.4 नवजात शिशु की देखभाल– (नवजात शिशु परिचर्या)

(क) **जातकर्म**–जात कर्म के अंतर्गत नाभिनाल का काटना (नाड़ी उपकल्पन), नवजात शिशु की सफाई, प्राणप्रतिष्ठा और मुख और नाक के स्रावों को निकालना, चेतना और प्रतिक्रिया को जांचने के लिए पत्थरों को रगड़ना या हाथ से कान के पास ताली बजाना। विभिन्न शरीर के अंगों एवं छिद्रों जैसे–गुदा, मूत्रद्वार इत्यादि की परीक्षा करना। गर्म और ठण्डे पानी से विशिष्ट ऋतुओं के अनुसार श्वसन तन्त्र को उत्तेजित करने के लिए सिकाई करना।

(ख) **रक्षा कर्म**–बच्चे को रोगों के प्रति सुरक्षित करने के उपाय करना। टीका रोधक रोगों के प्रति टीकाकरण। रक्षाकर्म–पीलु, बदर, निम्ब पुरुषक के पत्तों से हवा देना, तैल से भीगे हुए कपास के फोये को सिर पर रखना, और रक्षोघ्न (वचा इत्यादि) द्रव्यों से धूपन करना चाहिए।

तिल, अतसी, सर्षप एवं कण को चारों तरफ बिखेर देना चाहिए। आंतरिक रक्षाकर्म का उद्देश्य माता और शिशु को संक्रामक व्याधियों से सुरक्षा प्रदान करना।

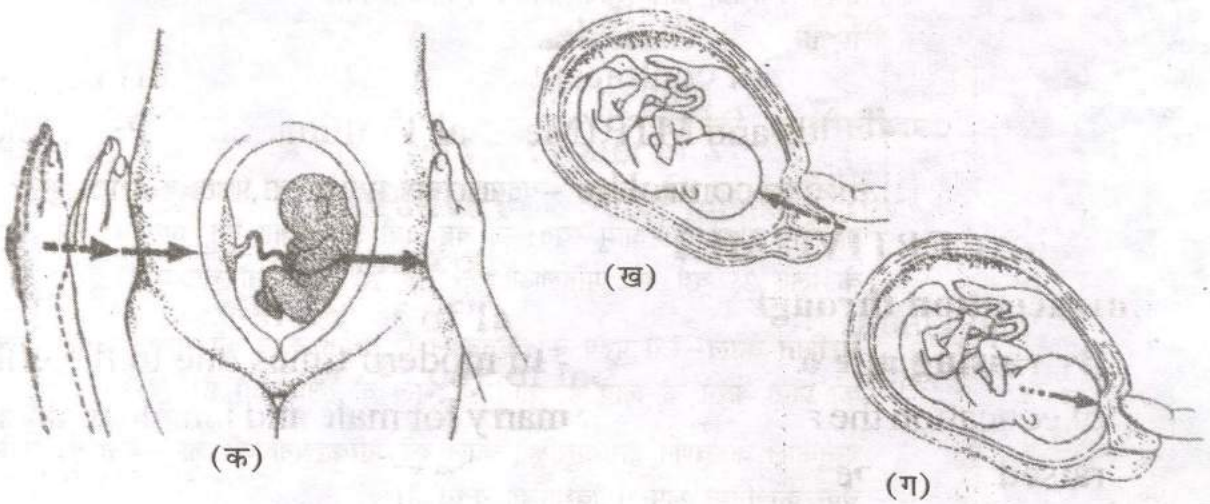

चित्र 3.2: क. भ्रूण की स्थिति ख. और ग. भ्रूण के बाहर निकलने की प्रकिया

(ग) **षष्ठी रात्रि रक्षा कर्म**–जन्म के बाद छठी रात्रि को विभिन्न क्रियाओं द्वारा रक्षा कर्म करना चाहिए।

(घ) तीव्र श्वसन संक्रमण एवं अतिसार का प्रबंध सावधानी से करना चाहिए।

(ङ) नवजात शिशु के लिए स्तनपान प्रक्रिया:

- जन्म के बाद प्रथम दिन से चौथे दिन तक शिशु का स्तनपान कार्यक्रम।

- माता का दूध और दाई।
- स्तनपान एवं विशिष्ट स्तनपान, प्राशन (4-6 महीने की आयु पर माता के दूध के स्थान पर धीरे-धीरे, अर्द्ध ठोस और ठोस आहार आरंभ करना), फल प्राशन (आहार में फलों को लेना), और इसके बाद अन्न प्राशन (दाल लेना)

पाठगत प्रश्न 3.1

1. दो अवधारणाओं को लिखें जो आयुर्वेद के माध्यम से परिवार कल्याण कार्यक्रमों को सुनिश्चित करती हैं।
2. परिवार नियोजन के लाभ क्या हैं?

3.5 गर्भ की रोकथाम एवं समाप्ति या गर्भ की रोकथाम एवं गर्भपात

गर्भनिरोधक उपाय गर्भनिरोध के लिए साधन हैं। आवश्यकता के आधार पर परिवार नियोजन गर्भनिरोधक विधियों और चिकित्सकीय गर्भपात कार्यक्रम जन्म और अनचाहे गर्भ को रोकने के लिए है।

गर्भनिरोधक विधियां–

1. **शादी की उम्र को बढ़ाकर**–वर्तमान समय में शिक्षा के प्रभाव के कारण पुरुष और स्त्री के लिए शादी की आयु स्वत: ही बढ़ गयी है। विवाह की आयु को बढ़ा कर पुरूषों के लिए 25 वर्ष और महिलाओं के लिए 20 वर्ष होनी चाहिए।
2. **सुरक्षित काल**–स्त्री पुरुष को ऋतुकाल में संभोग करने की सलाह केवल अच्छे संतान को प्राप्त करने के लिए है, शारीरिक सुख के लिए नहीं है।

   ऋतुकाल के वर्णन द्वारा सुरक्षित काल की परिकल्पना की जा सकती है। मासिक धर्म चक्र को निम्न रूप में विभाजित करते है।

   (क) **रजस्वलाकाल** (Menstrual period)–मासिक रक्तस्राव के प्रारम्भ होने से शुरू होकर और 3-7 दिनों तक सीमित रहता है।

   (ख) **ऋतुकाल** (Ovulation period अण्डस्राव काल)–मासिक धर्म शुरू होने के 12 दिन बाद (चक्र का 8वें दिन से 19वें दिन) गर्भधारण के लिए उत्तम काल है।

   (ग) **ऋतुव्यतीत काल**– मासिक धर्म चक्र का 20वें से 28वां या 30वां दिन (ऋतुव्यतीत काल के दौरान शरीर का सामान्य तापक्रम 0.8-1.0F बढ़ा हुआ होता है) प्रोजेस्ट्रान हार्मोन के प्रभाव के कारण शुक्राणु निषेचन के लिए योनिश्लेष्मा (सवाईकलम्युकस) प्रतिकूल होता है। यह काल मैथुन के लिए सुरक्षित होता है। जब गर्भधारण की सम्भावना नगण्य होती है।

3. **अपूर्ण व अधूरा संभोग या लय नियत्रंण विधि–**

गर्भधारण के लिए पार्श्व स्थिति में संभोग करना वर्जित है; जो संभवत् अपूर्ण संभोग को इंगित करता है।

4. **बाह्य या स्थानीय गर्भनिरोधक–**

(क) तैल में भीगा हुआ सैंधव लवण का एक टुकड़ा या धत्तूर मूल चूर्ण योनि नाल में रखने से यह भौतिक अवरोधक एवं शुक्रनाशक कारक (एजेंट) के रूप में कार्य करते हैं।

(ख) ऋतुकाल के बाद योनि नलिका का नीम काष्ठ से धूपन, गर्भधारण को रोकता है।

5. **मौखिक गर्भनिरोधक–**

(क) ऋतुकाल के दौरान पिप्पली, विडंग और टंकण को पानी या दूध के साथ समान मात्रा में लेना।

(ख) मासिक धर्म के दौरान लगातार तीन दिनों तक काञ्जी और पुराने गुड़ के साथ मिश्रित जपा पुष्प का सेवन करना।

(ग) मासिक धर्म के बाद जल में पिसा हुआ तण्डलीयक जिसमें चावल धुला हुआ हो, लगातार तीन दिन देना चाहिए। यह स्थायी गर्भनिरोधक है।

(घ) मासिक धर्म चक्र के चौथे दिन ठण्डे पानी को समान मात्रा में तालीशपत्र चूर्ण और रसोन का सेवन स्त्री को नपुंसक बना देते हैं।

गर्भनिरोध की अन्य बहुत सारी सुरक्षित विधियां है।

गर्भपातक–

स्थानीय प्रयोग–

1. **इलाज**–योनि नाल में 8 अंगुल तक एरण्ड पत्र नाल का प्रवेश 4 मास तक के गर्भ का गर्भपात कराता है।

2. मौखिक औषधियां–

(क) दाड़िम (अनार) का मूल, फिटकरी और सिन्दूर का सम्यक् चूर्ण करें और इन्हें मिलाकर पानी के साथ प्रयोग शक्तिशाली गर्भपातक है।

(ख) निर्गुण्डीसत्व के साथ चित्रकमूल का मिश्रण मधु में मिलाकर प्रयोग करने से गर्भपात का काम करता है।

बहुत-सी ऐसी सुरक्षित गर्भपात की विधियां आयुर्वेद में मिलती है।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. वर्तमान जीवनशैली में आयुर्वेद द्वारा परिवार कल्याण की जरूरत और महत्त्व की व्याख्या करें।

2. परिवार नियोजन की विधियों के नाम लिखें ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर–

3.1 1. परिवार कल्याण, शिशु अतिजीविता और सुरक्षित मातृत्व उपलब्ध कराया जा सकता है:–

(क) रजस्वलाचर्या (मासिकस्राव के समय देखभाल एवं मासिक धर्म विकार के रोकथाम)

(ख) ऋतुमतीचर्या (अण्डाणुस्राव के समय स्त्री की देखभाल) इस काल के समय केशर नस्य कर्म और वमन कर्म का प्रयोग ऋतुमती के लिए वर्जित है।

2. परिवार नियोजन के लाभ–

- गर्भनिरोध और गर्भपात द्वारा अनचाहे जन्म का परिहार्य।
- विभिन्न उपायों, कर्मकांडों और आहारक्रम द्वारा शिशुजन्म की योजना।
- दो गर्भों के बीच अंतराल।
- परिवार में बच्चों की संख्या निश्चित करना।

3.2 1. परिवार नियोजन द्वारा लघु परिवार मानकों को पूरा करने के लिए परिवार में बच्चों की संख्या सीमित करना। इसके अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं–

- विभिन्न उपायों, कर्मकाण्ड एवं आहारक्रम द्वारा शिशुजन्म की योजना।
- दो गर्भों के बीच समय अंतराल।
- परिवार में बच्चों की संख्या निश्चित करना।
- गर्भनिरोध एवं गर्भपात द्वारा अवांछित गर्भ का त्याग

2. गर्भ निरोधक विधियां–

- शादी की आयु बढ़ाकर।
- सुरक्षित काल (मैथुन काल)
- अर्धपूर्ण संभोग।
- बाह्य गर्भनिरोधक।
- मौखिक गर्भनिरोधक।

गर्भपातक–उपचार, मौखिक औषधि

(भाग-2)

पंचकर्म–सिद्धान्त और प्रायोगिक पक्ष

(अवधारणाएं, प्रक्रियाएं एवं प्रभाव)

4

पंचकर्म की मूलभूत अवधारणाएं

शब्द **''पंचकर्म''**–दो शब्दों से मिलकर बना है यथा–पंच का अर्थ पांच और कर्म का मतलब विधियां या उपाय। यह रोगों की रोकथाम और इलाज के लिए पांच चिकित्सकीय विधियों को दर्शाता है। यह आयुर्वेद में रोग एवं स्वास्थ्य दोनों अवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:

- पंचकर्म के सामान्य पहलू को समझेंगे;
- इसकी तीन विभिन्न प्रक्रियाओं को जानेंगे।

4.1 पंचकर्म चिकित्सा–

आयुर्वेद चिकित्सा में पंचकर्म पद्धति मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है। जिस पर संपूर्ण आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति टिकी है। इसकी प्रत्येक प्रक्रिया विशिष्ट विधियों या उपायों से बनी है जो विशिष्ट प्रकार के रोग, दोष, प्रकोप, प्रयोग एवं वर्जन के विचार से प्रयोग की जाती है। इसलिए, पंचकर्म प्रक्रिया को देने से पूर्व रोगी का चयन, निर्धारण एवं तैयारी सावधानीपूर्वक की जाती है। पंचकर्म चिकित्सा पद्धति पूर्णरूप से शरीर क्रिया एवं सम्प्राप्ति की आयुर्वेदीय अवधारणा पर आधारित है। इस प्रकार की चिकित्सा का अब प्रचार हो रहा है और यह विदेशों में प्रसिद्ध हो रही है।

4.2 संशोधन प्रक्रियायें–

पूर्वकर्म	प्रधान कर्म (पंचकर्म)	पश्चात कर्म
स्नेहन	वमन	संसर्जन क्रम
स्वेदन	विरेचन	
	अस्थापन	
	अनुवासन	
	शिरोविरेचन	

सामान्यत: पंचकर्म पद्धति निम्नांकित तीन प्रक्रियाओं से बनी हुई है:–

1. **पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रिया)**
2. **प्रधानकर्म (मुख्य प्रक्रिया)**
3. **पश्चातकर्म (क्रिया पश्चात प्रक्रिया)**

1. **पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रिया)**–पूर्वकर्म प्रारम्भिक प्रक्रिया है। यह मुख्य प्रक्रिया को सम्यक् रूप से सम्पादित करने के लिए आवश्यक है। यह मुख्यत: दो कर्मों से बनी है–
   (i) **स्नेहन कर्म**–वसायुक्त द्रव्यों (तैल, घी, जानवर वसा और अस्थि मज्जा)का प्रयोग।
   (ii) **स्वेदन कर्म**–स्वेद उत्पन्न करने के लिए औषधीय और अनौषधीय ताप का प्रयोग।
2. **प्रधान कर्म (मुख्य प्रक्रिया)**–पांच शोधन विधियों से बनी है, जो निम्नानुसार है–
   (i) वमन – (Emesis)
   (ii) विरेचन – (Purgation)
   (iii) निरुह वस्ति – (Decoction based enema)
   (iv) अनुवासन वस्ति – (Oil based enema)
   (v) शिरोविरेचन – (Snuffing)

पंचकर्म–पंचकर्म मुख्य रूप से संशोधन से संबंधित है जैसे–स्वच्छ करना, जिसका अर्थ है मल को बाहर निकालना। शरीर के विभिन्न जैव-रासायनिक उत्पाद एवं अपशिष्ट विषाक्त अपचित उत्पादों को बाहर निकालना संशोधन कहलाता है।

पश्चात कर्म–पश्चात कर्म संसर्जन कर्म से बना है जिसमें चिकित्सा पश्चात विशिष्ट आहार क्रम या आहार व्यवस्था देते हैं। पंचकर्म चिकित्सा कराने वाली सभी रोगियों के लिए पूर्वकर्म एवं पश्चात कर्म जरूरी है। हम यहां पंचकर्म चिकित्सा के कुछ लाभों की व्याख्या करेंगे जो निम्नांकित हैं–

- प्रकुपित दोषों एवं मलों को बाहर निकालना।
- निर्धारित समय में प्राकृतिक वेगों की उत्पत्ति।
- शरीर में हल्केपन की प्रतीति।
- इन्द्रियों की शुद्धि।
- मानसिक क्षमता एवं ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता में वृद्धि।
- आमाशय-आन्त्र नलिका का शोधन।
- पाचन क्षमता में वृद्धि।
- क्षुधा (भूख) वृद्धि।
- अवरुद्ध शरीर स्रोतों की शुद्धि।
- विषाक्ता के प्रकार और संबंधित रोगों का उचित उपचार।
- उसी व्याधि के बढ़ने की सम्भावना को रोकना।
- मौसमी (ऋतु कालीन) व्याधियों को रोकना।

पाठगत प्रश्न 4.1

रिक्त स्थान भरें –

1. सामान्यतः पंचकर्म चिकित्सा की तीन प्रक्रियाएं ....., ...और .....हैं।
2. यहां पंचकर्म चिकित्सा के लाभ जो है ....., ... और .....है।
3. पंचकर्म चिकित्सा कराने वाले सभी रोगियों के लिए पूर्वकर्म एवं .....:.. जरूरी है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने पंचकर्म पद्धति और उसकी प्रक्रियाओं का अध्ययन किया। आयुर्वेद में पंचकर्म पद्धति मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है, जिस पर आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली खड़ी है। हम पहले से समझ चुके हैं कि सामान्यतः पंचकर्म चिकित्सा पद्धति निम्न तीन प्रक्रियाओं से बनी है:–

1. पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रिया)
2. प्रधानकर्म (मुख्य प्रक्रिया)
3. पश्चात् कर्म (कर्म पश्चात प्रक्रिया)

हम पंचकर्म पद्धति के लाभों का अध्ययन पहले कर चुके हैं जो निम्नानुसार हैं:

(1) प्रकुपित दोषों एवं मलों को शरीर से निकालना।

(2) निश्चित समय में प्राकृतिक वेगों की प्रतीति।

(3) शरीर में लघुता की प्रतीति।

(4) इन्द्रियों की शुद्धि।

(5) मानसिक क्षमता एवं ज्ञानेन्द्रीय क्षमता में वृद्धि।

(6) आमाशय-आन्त्र नलिका की शुद्धि।

(7) पाचन क्षमता में वृद्धि।

(8) क्षुधा वृद्धि।

(9) अवरोधित शरीर स्रोतस की शुद्धि।

(10) संबंधित रोगों और विभिन्न विषों का उपचार।

(11) उसी व्याधि के बढ़ने की संभावना को रोकना।

(12) ऋतुकालीन व्याधियों की रोकथाम।

पाठांत प्रश्न

1. पंचकर्म चिकित्सा या पद्धति का विस्तार से वर्णन करें।
2. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:
   - पूर्वकर्म
   - पश्चात कर्म

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1 1. पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात कर्म।

2. शरीर में लघुता की प्रतीति, निश्चित समय में प्राकृतिक वेगों की प्रतीति, प्रकुपित दोषों एवं मलों की प्रवृत्ति।

3. पश्चात कर्म।

5

पूर्वकर्म
(प्रारम्भिक प्रक्रियायें)

पिछले अध्याय में हमने अध्ययन किया कि आयुर्वेदीय चिकित्सा में पंचकर्म पद्धति मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है, जिस पर संपूर्ण आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली टिकी हुई है। इसकी प्रत्येक प्रक्रिया विशेष विधियों से बनी है जो विशेष प्रकार के रोग, दोष प्रकोप, निर्देश एवं निषेध विचार से प्रयोग की जाती है। इसलिए पंचकर्म प्रक्रिया को देने के पूर्व रोगी का चयन, निर्धारण एवं तैयारी सावधानी से की जाती है। पंचकर्म चिकित्सा पद्धति पूर्ण रूप से शरीर क्रिया एवं रोग सम्प्राप्ति के आयुर्वेदीय अवधारणा पर आधारित है।

शरीर से दोषों को निकालने के लिए, विभिन्न पंचकर्म प्रक्रियाओं की जरूरत होती है, इन प्रक्रियाओं के पहले पूर्वकर्म जरूरी है क्योंकि इन प्रक्रियाओं के बिना शरीर के भीतरी उत्तकों में स्थित अशुद्धियों का पूर्ण निष्कासन असम्भव है। इस अध्याय में हम पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रिया) पर विचार-विमर्श करेंगे।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:–

- पूर्वकर्म को समझ पाएंगे;
- पंचकर्म की मुख्य प्रक्रिया की व्याख्या कर पाएंगे;
- स्नेहन एवं स्वेदन कर्म की प्रक्रिया और प्रयोग का वर्णन कर पाएंगे;
- स्वेदन कर्म का वर्गीकरण कर पाएंगे;
- स्नेहन द्रव्यों के विभिन्न स्रोतों पर प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करना, स्नेहन चिकित्सा के प्रकार, अभ्यंग पद्धति में महत्त्वपूर्ण विचार, अभ्यंग के प्रकार, आभ्यान्तर स्नेहन में अनुपान, साथ ही साथ पूर्वकर्म प्रक्रिया को समझने के लिए पश्चात स्वेदन व्यवस्था को जान पाएंगे।

5.1 पूर्वकर्म (प्रारम्भिक प्रक्रिया)

शरीर से दोषों को बाहर निकालने के लिए विभिन्न पंचकर्म प्रक्रियायें आवश्यक होती हैं। इस प्रक्रिया के पहले पूर्वकर्म अनिवार्य है क्योंकि इन प्रक्रियाओं के बिना शरीर के भीतरी उत्तकों में स्थित अशुद्धियों को उचित रूप से निकालना असम्भव है। यह दीपन-पाचन, स्नेहन और स्वेदन कर्म से बना है।

स्नेहन एवं स्वेदन कर्म शरीर की अशुद्धियों को आमाशय-आन्त्र नलिका तक सक्रिय और गतिशील बनाते हैं वहां से ये अशुद्धियां पंचकर्म की मुख्य प्रक्रिया द्वारा बाहर निकाली जा सकती हैं।

(क) **दीपन-पाचन**–रोगी की पाचन क्षमता और क्षुधा (भूख) बढ़ाने के लिए चित्रकादि वटी, त्रिकटु चूर्ण और पंचकोल चूर्ण प्रयोग करना चाहिए।

(ख) **स्नेहन कर्म**–यह मुख्य पूर्वकर्म प्रक्रिया है। शाब्दिक रूप से स्नेहन का अर्थ चिकना बनाना है। वसा एवं तैलीय द्रव्य असामान्य वात, मल को ठीक कर शरीर को कोमल बनाते हैं। और उन संचित अपद्रव्यों को नष्ट करते हैं जो शारीरिक स्रोतसों को अवरुद्ध किये रहते हैं।

(क)

(ख)

(ग)

(घ)

(ड)

चित्र 5.1 : तेल द्वारा अभ्यंग की विभिन्न स्थितियां

स्नेहन द्रव्य के आधारभूत स्रोत

(i) घृत - गोघृत

(ii) तैल - तिल तैल

(iii) वसा - जान्तव वसा

(iv) मज्जा - अस्थि मज्जा

स्नेहन कर्म का निर्देश

(i) मदात्यय

(ii) शरीर की रुक्षता

(iii) मैथुन की थकावट

(iv) शोक या चिंता

(v) प्रतिदिन व्यायाम

(vi) वीर्यक्षय

(vii) तिमिर रोग

(viii) बुढ़ापा

(ix) पंचकर्म तैयारी के लिए

स्नेहन कर्म का वर्जन

1. कफज और मोटे व्यक्ति
2. अत्यधिक गुदस्राव
3. मंदाग्नि
4. गर्भावस्था
5. प्यास
6. अजीर्ण
7. विषाक्तता
8. क्षुधानाश
9. वर्षा ऋतु
10. उदर रोग
11. विरेचन के पश्चात
12. वमन के पश्चात
13. सन्यास (मूर्च्छा)इत्यादि में

5.2 स्नेहन चिकित्सा के प्रकार

यह चिकित्सा दो प्रकार की होती है:

(i) स्नेह अभ्यंग - अभ्यंग द्वारा बाह्य स्नेहन।

(ii) स्नेहपान - वसा पान द्वारा आभ्यान्तर स्नेहन।

(i) **स्नेह अभ्यंग - अभ्यंग द्वारा बाह्य स्नेहन**- सामान्यत: मर्दन का प्रयोग शिथिलता उत्पन्न करने के साथ-साथ मांसपेशियों को बल देने के लिए किया जाता है। फिर भी यह संवहन बढ़ाने और स्वेदन में सहायता के लिए किया जाता है। औषधीय तैल का प्रयोग कर साधारणत: शरीर की मालिश करना अभ्यंग कहलाता है। पूर्णतया स्नेहित व्यक्ति में वाष्प या ताप का वितरण एक समान होता है और स्वेदन के लिए लगने वाला समय भी कम हो जाता है।

अभ्यंग/मालिश में महत्त्वपूर्ण विचार या प्रतिफल

अभ्यंग की दिशा और दबाव की मात्रा को निम्नांकित महत्वपूर्ण विचार निर्धारित करते हैं:

- पेशियों की उत्पत्ति और विलय या उद्गम और निवेश।
- रक्त संवहन के बहाव की दिशा।
- लसिका भरण की दिशा एवं वसा की मात्रा।
- मर्म स्थान/संधियां/पेशियां/हृदय इत्यादि।
- चिकित्सकीय भाग की तंत्रिका आपूर्ति।
- त्वचा पर बाल एवं बाल के जड़ की दिशा।
- शिरा अवरोध से जुड़े चिकित्सकीय अवस्थाएं जैसे कि अवरोधात्मक हृदय विफलता और लसिका ग्रन्थि शोथ संवहन को बढ़ाने के लिए अभ्यंग की दिशा विपरीत होनी चाहिए।

अभ्यंग के लिए प्रयोग तैल के प्रकार

सामान्यत; तेलों का चयन विद्यमान दोष के प्रकार पर निर्भर करता है।

शरीर अभ्यंग हेतु वात रोग में - नारायण तैल, पंचगुण तैल इत्यादि।

पित्त रोग में - क्षीरबला तैल।

कफज रोग में - सहचरादि तैल।

पूर्वकर्म प्रक्रिया के रूप में–

- वमन के पूर्व - 12 घण्टे के अंतराल पर 8 बार।
- आभ्यान्तर स्नेहन के पूर्ण होने के पश्चात सायंकाल से प्रारंभ।
- विरेचन के पूर्व - 12 घण्टे के अंतराल पर 8 बार।
- वस्ति पूर्व - प्रत्येक चिकित्सकीय एनीमा अभ्यंग के बाद देना चाहिए।

शरीर अभ्यंग के लिए आसन के प्रकार

1. बैठकर 2. लेटकर 3. वाम पार्श्व 4. पृष्ठ 5. दायें पार्श्व

(क)

(ख)

(ग) (घ)

चित्र 5.2: अभ्यंग में शरीर की मुद्राओं के रूप

अभ्यंग की विधि

अभ्यंग प्रारंम्भ करने से पहले रोगी को चेहरे के बल लेटने के लिए कहें शरीर पूर्व रूप से शिथिल अवस्था में हो। अभ्यंग के लिए गुनगुने तैल का प्रयोग करें। प्रथमत: अभ्यंग पृष्ठ पर मेरुदण्ड के दोनों तरफ अंगुलियों से प्रारंभ करें यथा–तंत्रिका मूल पर ऊपर से नीचे की ओर। यह मेरुदण्ड अभ्यंग कहलाता है। मेरुदण्ड के साथ कशेरुकाओं (vertebrae) का भी अभ्यंग हल्के हाथ से नीचे से ऊपर की तरफ गर्दन तक करें। कशेरूकों एवं तंत्रिका मूल पर अभ्यंग पूर्ण करने के बाद, संपूर्ण पृष्ठ भाग को हाथों के तलवों से अभ्यंग करते हैं। साथ ही दोनों नितम्बों को गोल-गोल अभ्यंग हाथ के तलवों से नीचे से ऊपर की ओर कंधे तक करते हैं। वृत्ताकार गति द्वारा कंधों का बार-बार अभ्यंग करते हैं। अभ्यंग के बाद, दोनों हाथों के अग्रभाग से कशेरूका और इसके दोनों तरफ थपथपाते हैं। अंत में संपूर्ण पृष्ठ भाग पर हाथों को वृत्ताकार गति करने के बाद बंद कर देते हैं। पृष्ठ अभ्यंग को खत्म करने के पश्चात रोगी को कहते हैं कि अपने पैरों को मोड़कर छाती एवं उदर (पेट) पर अभ्यंग के लिए पृष्ठ के बल सीधी अवस्था में लेट जायें। यह पैरों की अभ्यंग के द्वारा अनुसरित होना चाहिए और फिर शिर का अभ्यंग होना चाहिए।

मालिश के प्रकार और इनकी प्रक्रियायें:

(1) **अभ्यंग**–अभ्यंग के दौरान सामान्य दबाव लगाना।

- अभ्यंग की दिशा हृदय से दूर होती है।
- औषधीय तैल/शीशम तैल प्रयोग करते हैं।

(2) **उन्मर्दन**–अभ्यंग के दौरान सामान्य दबाव लगाना।

- अभ्यंग की दिशा हृदय की तरफ होती है।
- तैल प्रयोग होता है।

(3) **मर्दन**–अभ्यंग के दौरान अत्यधिक दबाव लगाना।

- अभ्यंग की दिशा हृदय से दूर होती है।
- तैल प्रयोग होता है।

(4) **संवहन**–दबाव का प्रयोग नही करते हैं।

- अभ्यंग की दिशा हृदय की तरफ होती है।
- चूर्ण या लेप प्रयोग करते हैं।

(5) **लेपायसी**–औषधीय लेप का प्रयोग करते हैं।

2. **स्नेहपान–अभ्यान्तर स्नेहन।**

आभ्यान्तर स्नेहन में साधारण तैल/घी या औषधीय तैल/घी का प्रयोग करते हैं।

स्नेहपान में अनुपान

1. **उष्णोदक**–गर्म जल: यह एक सर्वमान्य अनुपान है जिसका प्रयोग विशेष रूप से घृतपान में किया जाता हैं।
2. **यूष**–सूप इसका प्रयोग तैलपान में किया जाता है।
3. **मण्ड**–इसका प्रयोग वसा और मज्जापान में किया जाता है।

घृतपान में प्रयुक्त-दोषानुसार अनुसूची और अनुपान

1. वात दोष - लवण युक्त घृत अनुपान।
2. पित्त दोष - अनुपान के बिना केवल घृत।
3. कफ दोष - त्रिकटु चूर्ण।

स्नेहपान की प्रक्रिया

इसमें निम्नलिखित चरण शामिल हैं:

1. रोगी और रोग के बल की जांच करने के लिए रोगी का परीक्षण किया जाता है।
2. काल का निर्धारण (समय Duration): स्नेहनपान की औसत अवधि 3 से 7 दिन के बीच होनी चाहिए।

क्र.स.	स्नेहपान की अवधि	रोगी के कोष्ठ के प्रकार
1.	3 दिन	मृदुकोष्ठ
2.	4-6 दिन	मध्यम कोष्ठ
3.	7 दिन	क्रूर कोष्ठ

3. **मात्रा का निर्धारण**–आयुर्वेदीय ग्रंथों में निम्नांकित मात्रा अनुसूची दी गयी है। यह रोगी के अग्निबल (पाचन क्षमता) पर आधारित है।

क्र.स.	मात्रा	निर्देश
	न्यूनतम परीक्षण-मात्रा	कोष्ठ परीक्षण के लिए
1.	न्यून-(ह्रस्व)-6 घण्टे में पचने वाला	मृदु कोष्ठ
2.	मध्यम-12 घण्टे में पचने वाला	मध्यम कोष्ठ
3.	उत्तम-18 घण्टे में पचने वाला	क्रूर कोष्ठ

4. **स्नेहपान के दौरान आहार क्रम व्यवस्था**–द्रव, उष्ण और आहार क्रम की नियमित मात्रा निर्देशित है। विरोधिक, अत्यधिक तैलीय एवं चिपचिपा आहार वर्जित है।

5. **वास्तविक स्नेहपान की प्रक्रिया**–स्नेहपान प्रात:काल में जल्दी सूर्योदय के पश्चात 10-20 मिनट के अंदर देना चाहिए। स्नेहपान के प्रकार का स्वरूप रोगी के अनुसार होना चाहिए। स्नेहपान 25 मि.ली. की मात्रा से प्रारंभ किया जाता है और अवलोकन करते हुए निम्न अनुसूची के अनुसार मात्रा बढ़ानी चाहिए।

स्नेहपान के दौरान स्नेह द्रव्य की मात्रा का प्रायोगिक सारणी तालिका

क्र.स.	दिन की प्रायोगिक मात्रा		
परीक्षण मात्रा-	क्रर कोष्ठ 25 मि.ली.	मध्यम कोष्ठ 10 मि.ली.	मृदु कोष्ठ 5 मि.ली.
1.	50-75 मि.ली.	25-50 मि.ली.	10-30 मि.ली.
2.	75-100 मि.ली.	50-75 मि.ली.	30-60 मि.ली.
3.	100-150 मि.ली.	100-150 मि.ली.	60-120 मि.ली.
4.	150-200 मि.ली.	125-175 मि.ली.	____
5.	200-250 मि.ली.	200-250 मि.ली.	____
6.	275-300 मि.ली.	____	____
7.	350-400 मि.ली.	____	____
कुल	**1225-1500 मि.ली.**	**510-710 मि.ली.**	**105-215 मि.ली.**

आभ्यान्तर स्नेहन के पूर्ण होने के बाद, बाहरी शरीर की तैल मालिश की जाती है और यह स्वेदन कर्म द्वारा अनुसरित होना चाहिए।

स्वेदन कर्म - (औषधीय वाष्पन)

इस पद्धति के द्वारा व्यक्ति को स्वेदन (पसीना) उत्पन्न किया जाता है। चरक ने कहा है कि

स्वेदन वह प्रक्रिया है जो जकड़ाहट, भारीपन, शीत में आराम देता है और जो स्वेद उत्पन्न करता है। यह विशेष मल मेदधातु का उत्सर्जित पदार्थ है। स्वेदन कर्म सामान्यत: स्नेहन कर्म के बाद दिया जाता है तथा इसके बाद पंचकर्म चिकित्सा के क्रम में वमन कर्म किया जाता है। उपचित उत्सर्जित पदार्थ, जो वसा चिकित्सा या स्नेहन चिकित्सा द्वारा विघटित होते हैं, वे स्वेदन कर्म का प्रयोग करने के बाद पिघल जाते हैं और कोष्ठ में इकट्ठा होते हैं।

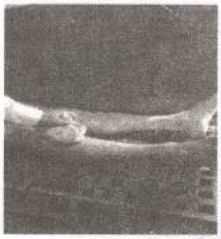

(क)

(ख)

(ग)

(घ)

(ड.)

चित्र 5.3 पूर्वकर्म

पूर्वकर्म प्रक्रिया के रूप में स्वेदन के अतिरिक्त यह कई व्याधियों विशेषरूप से वातप्रधान व्याधियों के लिए विशिष्ट चिकित्सा है, जहां स्वेदन प्रधान प्रक्रिया हो सकती है। फिर भी पंचकर्म पद्धति के प्रसंग में यह एक पूर्वकर्म माप है।

स्वेदन कर्म का वर्गीकरण

इस प्रक्रिया के अभ्यास के लिए बहुत सारे मार्ग और साधन हो सकते हैं और इसके अनुसार अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किए गए हैं।

(अ) साग्नि-निराग्नि भेद

क. **साग्नि-स्वेदन**–इनकी संख्या 13 हैं।

1. संकर	2. प्रस्तर	3. नाड़ी
4. परिषेक	5. अवगाहन	6. जेन्ताक
7. अश्मघ्न	8. कर्शू	9. कुटी
10. भू	11. कुम्भी	12. कूप
13. होलाक		

ख. **निराग्नि-स्वेद**–ये 10 प्रकार के होते हैं।

1. व्यायाम	2. ऊष्मा सदन	3. गुरुप्रावरण
4. क्षुधा	5. बहुपान	6. भय
7. क्रोध	8. उपनाह	9. युद्ध
10. आतप		

(आ) सुश्रुत और वाग्भट–स्वेदन चार प्रकार के होते हैं।

1. **ताप स्वेद**–ऊष्मा का सीधा प्रयोग करके जैसे–गर्म कपड़ा, लोहे की गेंद, हाथ या प्रत्यक्ष अन्य पदार्थों के प्रयोग द्वारा।
2. **उपनाह स्वेद**–पुलटिस द्वारा स्वेदन। स्वेदन उत्पन्न करने के लिए औषध द्रव्य और पदार्थों का प्रयोग पुलटिस के रूप में किया जाता है।
3. **उष्मा स्वेद**–भाप द्वारा स्वेदन जैसे–पानी का वाष्प या औषधीय क्वाथ का वाष्प स्वेदन।
4. **द्रव स्वेद**–इसमें एक बड़े बर्तन में औषध द्रव्य का क्वाथ बनाते हैं, जो अर्श, गुदचीर, भगन्दर रोगों में स्वेदन के लिए प्रयोग किया जाता है।

स्वेदन कर्म का निर्देश

प्रतिश्याय, कास, कर्णशूल शिरःशूल, पक्षाघात, अधोवात, कब्ज, मूत्रसंघात और मूत्रकृच्छ्र, हनुस्तम्भ, धर्नुवात (टिटनस), संधिवात, गम्भीर आमवात इत्यादि।

स्वेदन कर्म का वर्जन–मदात्यय, गर्भावस्था, रक्तस्राव, अतिसार, मधुमेह, कामला, उदररोग, उरःक्षत, वातरक्त और कुष्ठ इत्यादि।

स्वेदन कर्म की प्रक्रिया–स्वेदन कर्म के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों पर विचार करना चाहिए:

(1) व्याधि की प्रकृति–जैसा ऊपर वर्णित है।

(2) ऋतु (Season)

- शीत ऋतु में – अधिक स्वेद
- उष्ण ऋतु में – मृदु स्वेद

(3) **रोगी (Patient)** – यह निम्न रूप में विचारित है।

क्र.स.	रोगी की अवस्था	स्वेदन का प्रकार
1.	मानसिक और शारीरिक बल उत्तम	तीव्र स्वेद
2.	मानसिक और शारीरिक बल मध्यम	मध्यम स्वेद
3.	मानसिक और शारीरिक बल दुर्बल	मृदु स्वेद

(4) **देश**–रोगी शरीर का भाग

- रुक्ष स्वेद – आमाशयगतवात में
- स्निग्ध स्वेद – पक्वाशयगत वात में
- अण्डकोष, हृदय और नेत्रों के लिए स्वेदन वर्जित है।

(5) **आयु (वय)**–आयु का विचार करके स्वेदन कर्म अपनाना चाहिए।

यह दो प्रकार का होता है–

- संशोधन–प्रारम्भिक उपाय के रूप में।
- संशमन–वातिक विकारों पर मुख्य उपाय के रूप में।

स्वेदन पश्चात–

- खुली हवा में रहना वर्जित है।
- शीतल जल का त्याग करें।
- ऊष्ण जल से सेक करना चाहिए।
- रात्रिजागरण का त्याग करें।
- अत्यधिक और कठिन काम का त्याग करें।
- क्रोध और चिंता का त्याग करें।

अगर स्वेदन कर्म संशोधन के रूप में प्रयोग होता है तो वमन कर्म स्वेदन के 2 दिन बाद देना चाहिए और विरेचन तीन दिन के अंतराल के बाद देना चाहिए। अगर बस्ति और नस्य कर्म दिया जाना है तो स्वेदन कर्म तत्काल प्रयोग कर सकते हैं।

समय और काल–30-45 मिनट, स्वेदन और अभ्यंग के लिए।

स्वेदन कर्म में विशिष्ट सावधानियां:

(1) रोगी का अत्यधिक स्वेदन नहीं करें।

(2) रोगी के नेत्रों को रूई के फोये से ढक सकते हैं।

(3) हृदय, शिर और जननांगों पर प्रत्यक्ष ताप प्रयोग न करें

(4) नाड़ी स्वेद प्रयोग के स्थान को पानी में भीगे कपड़े से ढ़ककर रखना चाहिए।

(5) अत्यधिक ताप के कारण अगर रोगी थकावट महसूस करे तो उसे स्वेदन के बाद चीनी और नमक के घोल का पानी एक गिलास दे सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 5.1

बताएं गलत या सही:

1. वास्तविक पंचकर्म पद्धति तीन मुख्य प्रक्रियाओं से बनी हुई है। ( )
2. तिमिर रोग और मैथुनजन्य थकान में स्नेहन वर्जित है। ( )
3. अवरोधजन्य हृदय विफलता में मालिश हृदय से दूर करनी चाहिए। ( )
4. मांस और शुक्र का विशिष्ट मल स्वेद है। ( )
5. अर्श, गुदचीर और भगन्दर में द्रव स्वेद प्रयोग किया जाता है। ( )
6. वमन कर्म स्वेदन के 2 दिन बाद देना चाहिए। ( )

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने पूर्वकर्म के साथ पूर्वकर्म की विधियों का अध्ययन किया। निर्देश एवं स्नेहन और स्वेदन कर्म की प्रक्रिया दी गयी है। यह अध्याय स्नेहन द्रव्य के विभिन्न स्रोतों को सम्मिलित करता है। स्नेहन चिकित्सा के प्रकार, अभ्यंग चिकित्सा में महत्त्वपूर्ण विचार, अभ्यंग या मालिश के प्रकार, आभ्यान्तर स्नेहन में अनुपान, साथ ही साथ पूर्वकर्म प्रक्रिया को समझने के लिए स्वेदन पश्चात आहार नियंत्रण को सम्मिलित किया गया है।

पाठांत प्रश्न

1. पंचकर्म की मुख्य प्रक्रियाओं की व्याख्या करें।

2. आभ्यान्तर स्नेहन चिकित्सा में क्या प्रक्रिया अपनाई जाती है और अभ्यंग चिकित्सा में महत्वपूर्ण विचारों के बारे में संक्षिप्त में विचार लिखें।

3. स्वेदन कर्म क्या है? स्वेदन कर्म में प्रक्रियाओं या विधियों और सावधानियों के बारे में विस्तार से वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

बताएं गलत या सही:

1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत

5. सही 6. सही

6

प्रधानकर्म

पिछले अध्याय में हमने पूर्वकर्म के साथ पूर्वकर्म की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया। आभ्यान्तर शोधन पांच प्रक्रियाओं यथा–पंचकर्म द्वारा किया जाता है। यह शरीर के मुख्य स्रोतसों से अपचित उत्सर्जित पदार्थों को निकालने की प्रक्रिया है यथा–आमाशय–आन्त्र नलिका और उर्ध्व श्वसन नलिका। वमन कर्म मुख्यत: कफ एवं इससे संबंधित विकारों के लिए प्रक्रिया है। जबकि विरेचन एवं वस्तिकर्म क्रमश: पित्त एवं वात दोष और उससे संबंधित विकारों से संबंधित है। अन्य शेष प्रक्रियाएं इन तीन प्रक्रियाओं की सहायक हैं। शोधन पश्चात शरीर स्रोतस स्वच्छ एवं प्रभावी हो जाते हैं। शरीर के उर्ध्वभाग की अशुद्धियां वमन कर्म द्वारा बाहर निकाली जाती हैं और उदर की अशुद्धियां विरेचन कर्म द्वारा निकाली जाती हैं। वस्ति कर्म का प्रयोग विशेष रूप से शरीर के विभिन्न भागों से नाभि के नीचे स्थित अंगों में वात दोष के शमन के लिए किया जाता है। शिरोविरेचन अक्ष प्रदेश से ऊपर के रोगों के लिए प्रयोग करते है। इस अध्याय में हम विस्तार से प्रधानकर्म का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:

- प्रधानकर्म (पंचकर्म) और इसकी मुख्य प्रक्रियायें को समझ सकेंगे;
- इसकी तीन विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग कर सकेंगे।

6.1 प्रधानकर्म–

आभ्यान्तर शोधन पांच शोधन प्रक्रियाओं यथा–पंचकर्म द्वारा किया जाता है।

पांच मुख्य प्रक्रिया– प्रधानकर्म निम्नानुसार हैं :

(क) वमन (उल्टी) – Emesis

(ख) विरेचन – Purgation

(ग) निरुह वस्ति – Decoction based enema

(घ) अनुवासन वस्ति – Oil based enema

(ङ) शिरोविरेचन – Snuffing or errhines

यह शरीर के मुख्य स्रोतसों से अपचित उत्सर्जित पदार्थों को निकालने की प्रक्रिया है यथा–आमाशय-आंत्र नलिका और उर्ध्व श्वसन नलिका। वमन कर्म मुख्यत: कफ एवं इससे संबंधित विकारों के लिए योजित है जबकि विरेचन एवं बस्ति कर्म क्रमश: पित्त और वात दोष एवं उससे संबंधित विकारों से संबंधित है। अन्य शेष प्रक्रियायें इन तीन प्रक्रियाओं के बाद की जाती है। शोधन पश्चात शरीर के स्रोतस, स्वच्छ, प्रभावी एवं व्यवहारिक हो जाते हैं। शरीर के ऊपरी भाग की अशुद्धियां वमन कर्म द्वारा बाहर निकाली जाती हैं और उदर की अशुद्धियां विरेचन कर्म द्वारा निकाली जाती हैं। वस्ति कर्म का प्रयोग शरीर के विभिन्न भागों विशेष रूप से नाभि के नीचे स्थित अंगों में वात दोष के शमन के लिए किया जाता है। शिरोविरेचन अक्ष प्रदेश से ऊपर के रोगों के लिए प्रयोग करते है।

6.2 पंचकर्म की मुख्य प्रक्रियायें (प्रधान कर्म) -

प्रारम्भिक प्रक्रियाओं के पश्चात यथा–स्नेहन कर्म और स्वेदन कर्म, पंचकर्म की प्रक्रियाओं का मुख्य विषय रोगी है। पंचकर्म का निर्देश, वर्जन और प्रत्येक प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन नीचे किया गया है:-

(क) वमन (चिकित्सकीय उल्टी)

वमन पंचकर्म चिकित्सा की मुख्य प्रक्रिया है। शाब्दिक रूप में वमन का अर्थ प्रकुपित दोषों को मुख मार्ग द्वारा बाहर निकालना है। बाहर निकले पदार्थों में अपचित आहार, कफ और पित्त हो सकते हैं। वमन कर्म कफ दोष एवं इससे संबंधित विकारों के लिए विशेष चिकित्सा है। असंतुलित दोषों को बाहर निकालने के लिए, यह आवश्यक है कि प्रकुपित दोषों को शाखा (Peripheral part) से चलायमान किया जाय और फिर इनको वापस शाखा से शरीर के केंद्र भाग कोष्ठ में लाया जाए और वहां से ये आसानी से वमनादि कर्मों द्वारा बाहर निकाले जा सकते हैं।

चित्र 6.1 : वमन (पंचकर्म)

वमन कर्म का निर्देश–

नासा स्राव, त्वचा रोग, कास, श्वास (अस्थमा), श्लीपद, गण्डमाला, अपच, विषाक्तता, अर्श, अपस्मार, मनोविकार, अर्बुद, स्थौल्य (obesity), कफज व्याधि इत्यादि।

वमन कर्म में निषेध–

वक्षाघात, अत्यधिक स्थौल्य, बाल्यावस्था, वृद्धा अवस्था, गर्भावस्था, अतिमैथुन, दुर्बल और थके व्यक्ति में, कृमि, रक्तस्राव, वस्ति पश्चात, हृदरोग, मूत्राघात, प्लीहाशोथ, शिरःशूल, नेत्रशूल, वक्षशूल, पेशी–तंत्रिकागत व्याधियों में।

वमन कर्म की प्रक्रिया–

वमन कर्म के पहले निम्नांकित महत्त्वपूर्ण जरूरतों को पूर्ण करना चाहिए।

1. **आवश्यक साधनों को एकत्र करना**–उपचारिका/सहायक कर्मचारी वर्ग, यंत्र, पात्र, वमन उत्पन्न कराने के लिए उपयुक्त औषध, और उपद्रवों को व्यवस्थित करने के लिए उपयुक्त औषध।
2. **मात्राओं का निर्धारण**–

   आचार्य चरक ने वमन की आदर्श मात्रा का लक्ष्य निम्नांकित रूप में वर्णित किया है।

   (क) अल्प मात्रा के द्वारा दोषों को अत्यधिक निकालना।

   (ख) वमन के स्वतः वेग का होना।

   (ग) वमन के पश्चात रोग का शमन।

   (घ) उपद्रव का न होना।

   (ङ) रस, रंग और गंध उपस्थित होना चाहिए।

> कस्तुरे (1970) द्वारा प्रस्तावित वामक द्रव्यों की औसत मात्रा स्तर निम्नांकित है–
> - क्वाथ - 100–126 मिली.
> - चूर्ण, कल्क - 90–100 ग्राम

3. **आतुरसिद्धता या रोगी की तैयारी**–
   - उपयुक्त आहार और प्रक्रियाओं द्वारा दोषों के गुणों और मात्रा को बढ़ाया जाता है।
   - वमन के एक दिन पूर्व कफवर्धन आहार दिया जाता है जैसे–मछली, दूध, दही, चावल इत्यादि।
   - उस दिन वमन के पूर्ण संपूर्ण शरीर और शिर पर तैल लगायें एवं मालिश करें।

4. रोगी को उपयुक्त सलाह एवं आश्वासन दिया जाता है।
5. रक्तदाब, नाड़ी, नाड़ीदर, हृदयगति को प्रत्येक आधे घण्टे पर वमन कर्म के दौरान मापते रहना चाहिए।
6. **वमन कर्म की विधि–**

रोगी को आराम से खुली हाथों वाली कुर्सी पर बैठने और अपने दिमाग को शांत रखने के लिए कहें।

वामक द्रव्यों और वामक औषधियों के योगों को अत्यधिक संख्या में रखना चाहिए जो वमन में सहायता करते हैं। मदनफल-पिप्पली को सभी वामक द्रव्यों में श्रेष्ठ वामक द्रव्य माना गया है और जो सामान्यत: अभ्यास में प्रयोग होते हैं।

वमन के लिए निम्नांकित योग की एक मात्रा प्रयोग कर सकते है।

मदनफल चूर्ण	–	5-10 ग्राम
वचा चूर्ण	–	3-5 ग्राम
सैंधव लवण	–	5-10 ग्राम
मधु व शहद	–	20-40 ग्राम

तैयार द्रव्यों को अच्छी तरह मिश्रित करके और इनका मिश्रण बना लें। अब इसे एक गिलास दूध में मिश्रित करें और रोगी को पीने के लिए कहें। रोगी को 10 मिनट तक प्रतीक्षा करने के लिए कहें। इसके बाद भर पेट दुग्ध पीने के लिए देते हैं या आमाशय के पूर्ण होने तक दुग्धपान कराते हैं।

वमन प्रक्रिया के दौरान रोगी का चिकित्सकीय निरीक्षण–

रोगी को वामक द्रव्यों को देने के बाद, उसे 10 मिनट तक देखें, तो उसमें निम्न लक्षण दिखते हैं।

(क) मस्तक, हस्त और वक्ष पर स्वेद।
(ख) रोम हर्ष।
(ग) उदर में आध्मान।
(घ) अत्यधिक मुखस्राव।
(ङ) हल्लास की प्रतीति।
(च) वमन या उल्टी–जो पित्तांत वमन तक निरंतर होती रहती है।

- अगर स्वत: वमन उत्पन्न नहीं होता है तो हमें वमन उत्पन्न कराने के लिए अंगुली को गले में डालना चाहिए।
- अगर यह विधि भी असफल है तो निश्चित वमन के लिए मदनफल, मधुयोग देना चाहिए।
- अगर यह विधि भी असफल रहती है तो राइल्स ट्यूब एस्पाइरेशन और यंत्रवत आमाशय धावन करना चाहिए।
- वमन चिकित्सा के पश्चात औषधीय धूम्रपान दिया जाता है।

प्रभावी वमन के लिए मापदण्ड–

वमन	हीन शुद्धि Low	मध्यम शुद्धि Medium	प्रवर शुद्धि Maximum
वेगों की संख्या	4	6	8
संपूर्ण मात्रा	1 प्रस्थ 768ग्राम	$1^1/_2$ प्रस्थ 1152 ग्राम	2 प्रस्थ 1536 किलो.ग्राम
अन्य कारक	कफ-मल निकलना	अंत में कफ बाहर निकलना	कफ+पित्त निकलना

सामान्य वमन की विशेषताएं:

- मलों/दोषों को निश्चित समय में निकलना चाहिए।
- अंतिम वेग में पित्त का निकलना जरूरी है।
- मानसिक एवं शारीरिक स्थिति अच्छी होनी चाहिए।
- स्रोतसों का शोधन।
- सम्पूर्ण शरीर में लघुता (हलकापन) आनी चाहिए।
- कफ दोष से संबंधित विशिष्ट विकारों का शमन होता है।

वमन कर्म की जटिलताएं और उनका प्रबंधन–

1. **अतिसार**–रोगियों का रक्तदाब और नाड़ी का अनुवीक्षण करना। कभी यह अधिक होता है या अगर यह कम होता है तो एक गिलास पानी में नमक और चीनी का घोल बनाकर रोगी को देना चाहिए।
2. **रक्त वमन**– वमन प्रक्रिया को रोक दें। अगर जरूरत पड़े तो रक्तस्तम्भक औषधियां प्रयोग कर सकते हैं।
3. **अत्यधिक वमन**–द्रव और इलैक्ट्रोलाइट का संतुलन बनाये रखना। वमन रोधक प्रक्रिया प्रयोग करना चाहिए।
4. **तंत्रिकागत दर्द व शूल**–उपयुक्त औषध देना चाहिए।
5. **उदर में शूल**–उपयुक्त औषध देना चाहिए।
6. **उदर में जलन की प्रतीति**–उपयुक्त औषध देना चाहिए।
7. **मल स्तम्भ**–मृदु रेचक का प्रयोग करें।

वमन चिकित्सा के लिए अनुसरित पूर्वोपाय–

1. धूम्रपान (औषधीय धूम्रपान) की सलाह दी गई है।

2. निम्नांकित का त्याग करना चाहिए:

(i) जोर से बोलना।

(ii) अत्यधिक भोजन।

(iii) क्रोध और चिंता।

(iv) ज्यादा चलना।

(v) अत्यधिक ऊष्ण और शीत।

(vi) मैथुन।

(vii) रात्रिजागरण।

(viii) वेगधारण (प्राकृतिक वेगों का धारण)।

(ख) विरेचन कर्म (चिकित्सकीय रेचन)

विरेचन चिकित्सा साधारण रेचन नहीं हैं बल्कि यह पित्त दोष और पित्त प्रधान व्याधियों की व्यवस्थित चिकित्सा है। यह कहा जा सकता है कि वमन एक चिंतायुक्त प्रक्रिया है लेकिन विरेचन वेदनारहित प्रक्रिया है। यह आमाशय से पित्त दोष को बाहर निष्कासित करती है। इसमें निम्न कोटि की जटिलताएं होती हैं। और अगर ये होते भी है तो वे कम खतरनाक होते हैं।

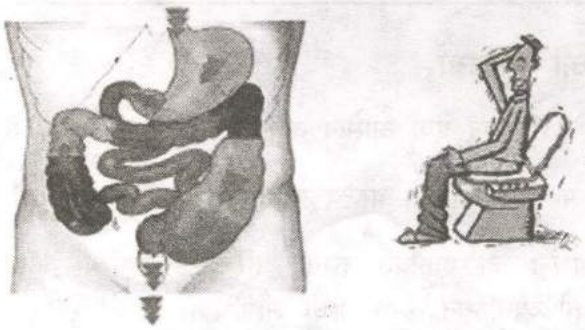

चित्र 6.2: विरेचन कर्म

वमन चिकित्सा के तीन दिन बाद इसे ले सकते हैं। अगर वमन चिकित्सा किसी विशेष व्याधि में निर्देशित नहीं है तो भी सीधे-सीधे विरेचन दे सकते हैं।

विरेचन कर्म के लिए निर्देश–

ज्वर, त्वक् रोग, मधुमेह, भगन्दर, अर्श, विबंध, प्लीहा रोग, उदर शोथ, विषाक्तता, हृद्य रोग, वातरक्त, स्त्री रोग, आमाशय-आन्त्रगत विकार, कामला, अंगघात मंदाग्नि इत्यादि।

विरेचन कर्म में निषेध–

गुदचीर, गुदभ्रंश, रक्तस्राव, वस्ति (इनेमा), मदात्यय, अतिमैथुन, गर्भावस्था, दौर्बल्य, भूख-प्यास की अवस्था, भय, क्रोध, शल्य कर्म कराने वाले व्यक्ति, अतिसार, राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय।

विरेचन कर्म के लिए प्रयुक्त होने वाली औषधियां :

1. सुख विरेचन - त्रिवृत मूल।
2. मृदु विरेचन - अमलतास (फल मज्जा)।
3. तीक्ष्ण विरेचन - स्नुहीक्षीर।
4. श्यामा त्रिवृत्त की मूल।
5. तिल्वक की मूल।
6. हरीतकी फल।
7. एरण्ड का तैल।
8. करेले का रस।

विरेचन कर्म की प्रक्रिया–

पंचकर्म चिकित्सा में विरेचन एक आसान और कम जटिलताओं वाली प्रक्रिया है।

विरेचन क्रिया के पहले निम्नांकित महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए।

1. आवश्यक साधनों को एकत्रित करना, परिचारक कर्मचारी, विरेचन औषधियां, और जटिलताओं को व्यवस्थित करने वाली औषधियां।
2. अत्यधिक विरेचन को व्यवस्थित करने के लिए औषधियों को एकत्रित करना जैसे–कर्पूर रस, जातीफलादिचूर्ण, बिल्वादि चूर्ण।
3. विरेचन चिकित्सा के लिए रोगी का चुनाव दोष, देश, काल, बल, शरीर सात्म्य, सत्व, वय के अनुसार करना चाहिए। भेषज और आहार तदनुसार देना चाहिए।
4. विरेचन चिकित्सा के रोगी में रोजाना नाड़ी, रक्तदाब (Blood Pressure), मूत्र, मल, जिह्वा, कान, आंख इन का परीक्षण करना चाहिए।

विरेचन कर्म की विधि–

रोगी को पहले 6 दिन तक स्नेहन और स्वेदन (3 दिन स्नेहन और 3 दिन स्वेदन) देना चाहिए। विरेचन के एक दिन पहले रोगी को लघु और ऊष्ण (गर्म) आहार देना चाहिए। कफज काल (सुबह 8.39 के बाद) के समाप्त होने के बाद विरेचन औषध देनी चाहिए। विरेचन चिकित्सा के लिए निम्नांकित द्रव्य योगों का प्रयोग किया जाता है–

(क) मृदु कोष्ठ के लिए पानी के साथ 10–15 ग्राम त्रिवृत्त चूर्ण।

(ख) मध्यम कोष्ठ के लिए त्रिवृत्त का चूर्ण–10 ग्राम + एरण्ड तैल–30 मिली.

(ग) क्रूर कोष्ठ के लिए एरण्ड तैल– 20 मिली. + इच्छाभेदी रस–125 मि. ग्राम

(घ) वमन रोकने के लिए औषध को शहद के साथ मिश्रित कर सकते हैं।

(ङ) वेगों को उत्पन्न करने के लिए नियत अन्तराल पर अल्प मात्रा में गर्म जल देना चाहिए, जबकि शीतल जल पूर्ण रूप से वर्जित है।

विरेचन की मात्रा का आकलन

विरेचन का क्रम	अच्छा	मध्यम	कम
वेगों की संख्या	30	20	10
मल की मात्रा	4 प्रस्थ 3072 मिली	2 प्रस्थ 1536 मिली	1 प्रस्थ 768 मिली
निष्कासित पदार्थों का क्रम	अन्त में कफ आता है	पित्त	वात
लक्षण	उपर्युक्त विरेचन के लक्षण और चिह्न		

मात्रा का निर्धारण–

क्र.स.	द्रव्य	मृदुकोष्ठी	मध्यम कोष्ठी	क्रूर कोष्ठी
1.	एरण्ड तैल	10 - 20 मिली.	20-50 मिली.	50-100 मिली.
2.	त्रिवृत चूर्ण	1-3 ग्राम	3-6 ग्राम	5-10 ग्राम
3.	द्राक्षारिष्ट	10-20 मिली.	25-50 मिली.	50-100 मिली.
	आरग्वध	1-3 ग्राम	3-6 ग्राम	5-10 ग्राम
	हरीतकी चूर्ण	1-3 ग्राम	3-6 ग्राम	5-10 ग्राम
	त्रिफला चूर्ण	1-3 ग्राम	3-6 ग्राम	5-10 ग्राम
4.	जयपाल–स्नुही क्षीर	50-125 मि.ग्राम	125-250 मिग्रा.	500 मिग्रा. - 1 ग्राम
5.	इसबगोल छिलका	3 ग्राम	3-6 ग्राम	10-20 ग्राम

1. **क्वाथ की मात्रा–**
   - उत्तम मात्रा - 80 मिलीलीटर।
   - मध्यम मात्रा - 40 मिलीलीटर।
   - हीन मात्रा - 20 मिलीलीटर।

2. **कल्क और चूर्ण की मात्रा–**
   - उत्तम मात्रा - 40 ग्राम।
   - मध्यम मात्रा - 20 ग्राम।
   - हीन मात्रा - 10 ग्राम।

मात्रा के अनुसार विरेचन द्रव्यों का प्रयोग–

- वात्तिक दोष - त्रिवृत्त + सैंधव + शुण्ठी चूर्ण।
- पैत्तिक दोष - त्रिवृत्त चूर्ण + द्राक्षा क्वाथ।
- कफज दोष - त्रिफला क्वाथ + गोमूत्र + त्रिकटु चूर्ण।

सम्यक् विरेचन के लक्षण–

- दोष निकलने चाहिए।
- रोगों का शमन।
- प्राकृतिक वेगों की सम्यक् प्रवृत्ति।
- शरीर स्रोतसों का शोधन।
- ज्ञानेन्द्रियां की प्रसन्नता।

सावधानियाँ–

- कफकर आहार का त्याग करें।
- विरेचन कर्म के दौरान आमाशय खाली होना चाहिए।
- हमेशा उष्णजल का प्रयोग करें।
- क्रोध, अत्यधिक मैथुन, विरेचन पश्चात व्यायाम का त्याग करें।
- प्राकृतिक वेगों के धारण का त्याग करें।

विरेचन कर्म की जटिलताएं–

1. रक्त मिश्रित अतिसार– इसमें जातीफलादि चूर्ण का प्रयोग करें और द्रव और इलेक्ट्रोलाइट संतुलन को बनाये रखें।

   अत्यधिक रक्तस्राव की स्थिति में रक्तस्तम्भक औषधियों का प्रयोग करें।

2. परिकर्तिका (cutting pain)–इसमें जात्यादि घृत का प्रयोग करें।

3. भ्रम की स्थिति–इसमें त्रिकटु चूर्ण नस्य दें।

वस्ति कर्म

(ग) निरुह वस्ति (घ) अनुवासन वस्ति

गुदा, शिश्न-नलिका और योनि के माध्यम से एनीमा द्वारा अपेक्षित चिकित्सकीय प्रभाव के लिए औषधियों को देना वस्ति चिकित्सा कहलाता है।

गुदा के माध्यम से वस्ति द्रव्यों को प्रवेश कराना अधोवस्ति कहलाता है और मूत्रद्वार एवं योनि के माध्यम से वस्ति देना उत्तरवस्ति कहलाता है।

वस्ति कर्म का प्रभाव नीचे दिया गया है:

- शुक्र का पुनःस्थापन।
- क्षीण व्यक्ति में बृंहण (शरीर की मजबूती)।
- मोटे व्यक्ति में कर्षण।
- दृष्टि में वृद्धि या वर्धन।
- जरावस्था प्रक्रिया को रोकना।
- चमक, बल और स्वास्थ्य में वृद्धि।
- दीर्घायु होना।

यह वातिक व्याधियों के लिए विशिष्ट चिकित्सा है। वस्ति को वातिक विकारों की अर्धचिकित्सा कहा गया है।

वस्तिकर्म के प्रकार

- आस्थापन या निरुह वस्ति–यह क्वाथ आधारित एनीमा है।
- अनुवासन या स्नेह वस्ति–यह तैल आधारित एनीमा है।

(ग) निरुह वस्ति–(क्वाथ आधारित वस्ति)

इस प्रकार की वस्ति हेतु संबंधित दोष को निकालने के लिए चयनित द्रव्यों का क्वाथ प्रयोग किया जाता है। यह शारीरिक उत्तकों को उनके सामान्य क्रियाओं के लिए नियमित करता है। इस उद्देश्य के लिए प्रयोग होने वाली क्वाथ की मात्रा 500 मिली. से 1000 मिली.रोगियों के अवस्था के ऊपर निर्भर करती है। इसका शोधन प्रभाव ज्यादा है। यह दोपहर पश्चात दिया जाता है। रोगी को सुबह में आहार लेने से मना कर देना चाहिए।

(घ) अनुवासन वस्ति (तैल प्रधान वस्ति)

वसा निर्मित योग को एनीमा के माध्यम से गुद मार्ग में प्रविष्ट किया जाता है और वांछित चिकित्सकीय प्रभाव के लिए इसे कुछ समय तक शरीर में ही रहने देते हैं।

यह अनुवासन वस्ति कहलाता है यह एक उचित धारणीय वस्ति नहीं है बल्कि यह रोग के लिए एक संपूर्ण चिकित्सा है जहां यह निर्देशित है। अनुवासन के लिये प्रयोग होने वाले वस्ति पदार्थ 50 से 100 ग्राम तैल का बना होना चाहिए।

यह विशेष रूप से वातिक रोगों तथा जिस रोगी के शरीर में अत्यधिक रूक्षता हो, उनमें निर्देशित है।

निर्देश एवं वर्जन–

	आस्थापन वस्ति	अनुवासन वस्ति
निर्देश	80 प्रकार के वात रोग, ज्वर, विभिन्न प्रकार की वेदना, प्रतिश्याय, कृमि, वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, वेदनायुक्त मूत्रत्याग।	आस्थापन वस्ति के जैसा- रुक्षता, तीक्ष्णाग्नि, वातव्याधि
वर्जन	अपच, अत्यधिक स्नेहन, मंदाग्नि, दुर्बल, थकावट (श्रम), भोजन किऐ हुए, क्रोध, अनिद्रा, उदरशोथ, विसूचिका, पाण्डु, भ्रम, गर्भावस्था, बाल्यावस्था, वृद्धावस्था इत्यादि।	जहाँ आस्थापन वर्जित है, जो खाली पेट हो, तब ज्वर, प्रतिश्याय, ऊरु में कड़ापन, विषाक्तता, गुरु आहार, गलगण्ड, त्वचा रोग, स्थौल्य इत्यादि।

वस्ति कर्म की प्रक्रिया–

1. रोगी की स्थिति वामपार्श्व स्थिति में होनी चाहिए साथ ही बायां पैर सीधा और दायां पैर और घुटना पेट से लगा होना चाहिए।
2. गुदा का स्नेहन–गुदा मार्ग और वस्ति में भी जात्यादि तैल का स्थानीय प्रयोग किया जाता है।
3. जब वस्ति और वस्ति द्रव्य दिया जाता है तो रोगी को गहरी सांस लेने को कहें।
4. हाथों में कम्पन न होने दें।
5. वस्ति नेत्र का तीव्र प्रवेश वर्जित है।
6. अति मंद वेग से वस्ति नेत्र प्रवेश नहीं करना चाहिए।
7. वस्ति नेत्र का मुख सीधा रखना चाहिए।
8. समस्त वस्ति द्रव्य का मलाशय, मूत्राशय और गर्भाशय में अकस्मात प्रवेश नहीं कराना चाहिए।
9. वस्ति द्रव्यों को प्रवेश कराने के पश्चात वस्तिनेत्र को तत्काल बाहर खींच लेना चाहिए।
10. वस्तिनेत्र निकालने के पश्चात रोगी को कुछ समय के लिए उसी स्थिति में लेटे रहना चाहिए।
11. इसके पश्चात रोगी को मल वेग निकालने के लिए शौच करने की स्थिति में बैठना चाहिए।

चिकित्सा के लिए आवश्यक उपकरण–

1. 50/20 मिली. सिरिंज/पोलीथीन बैग (1 लीटर)
2. विसल टिप सहित प्लेन रबर कैथेटर (नम्बर 10)

3. दस्ताने (एक जोड़ी)
4. कपास का टुकड़ा (आवश्यकता अनुसार)
5. दो विसंक्रमित नलिकाएँ (1 लीटर क्षमता वाली)

आयु के अनुसार निरुह (आस्थापन) वस्ति की मात्रा–

क्र.स.	वर्ष	निरुह वस्ति की अधिकतम मात्रा
1.	1 वर्ष	लगभग 50 मिलीलीटर
2.	10 वर्ष	लगभग 400 मिलीलीटर
3.	15 वर्ष	लगभग 900 मिलीलीटर
4.	18 वर्ष	लगभग 1200 मिलीलीटर
5.	70 वर्ष से ऊपर	लगभग 1000 मिलीलीटर

चिकित्सा अभ्यास में अच्छी चिकित्सकीय प्रतिक्रिया के लिए 600 से 900 मिली. के बीच की मात्रा दी जाती है।

पदार्थों को मिश्रित करने का क्रम–

1. प्रथम अवस्था में शहद या सैंधव लवण।
2. द्वितीय अवस्था में शहद+सैंधव लवण+तैल।
3. तृतीय अवस्था में शहद+सैंधव लवण+तैल+औषध।
4. तृतीय अवस्था से चतुर्थ अवस्था में क्वाथ मिलाना चाहिए।

इसे प्रत्येक स्तर पर लगातार मिश्रित करना आवश्यक है।

वस्ति घटक का अनुपात– शहद : स्नेह : क्वाथ - 1 : 4 : 8

वस्ति कर्म के दौरान याद रखने वाली बातें:

- निरुह वस्ति खाली पेट सुबह 6-8 बजे के बीच साधारण मालिश और अल्प स्वेदन के पश्चात दी जाती है।
- वस्ति औषध का वापस आने का अधिकतम अवधि लगभग 1 घण्टा है।
- अगर औषध 1 घण्टे के बाद भी बाहर नहीं आती है तो यवक्षार, गोमूत्र और अम्ल द्रव्यों से बनी दूसरी वस्ति दे सकते हैं।
- अगर वस्तिद्रव्य तत्काल बाहर आ जाता है तो दूसरी मात्रा दे सकते हैं।
- सामान्य वस्ति कर्म के लक्षण और चिह्न सामान्य होने के बाद, कुछ समय आराम करने की सलाह दें और उसके बाद रोगी को ऊष्ण जल से अवगाहन (Tub bath) लेने के लिए कहें।

- निरुह वस्ति के उपद्रवों के लिए नजर रखें।
- इसके पश्चात् विशेष आहार-क्रम का अनुसरण करायें।

सामान्य निरुह वस्ति (आस्थापन वस्ति) के लक्षण और चिह्न

- 15-30 मिनट के बीच में औषध का बाहर आना।
- 1 घण्टे पश्चात मल और मूत्र का वेग आना।
- शरीर में हल्कापन।

चित्र 6.3 : वस्ति कर्म का रूप

प्रकार के अनुसार अनुवासन वस्ति की मात्रा– (तैल प्रधान वस्ति)

1. स्नेह वस्ति – 300 मिली.
2. अनुवासन वस्ति – 150 मिली.
3. मात्रा वस्ति – 75 मिली.

- मात्रा वस्ति नियमित प्रक्रिया के रूप में किसी भी व्यक्ति में बिना जटिलता के प्रयोग कर सकते हैं।
- बस्ति लेने और वस्ति प्रक्रिया का काल–

  शीत और वसन्त ऋतु - सुबह के समय।

  गर्मी और वर्षा ऋतु - शाम के समय।
- अनुवासन वस्ति लघु आहार लेने के 15-30 मिनट पश्चात लेना चाहिए।
- अनुवासन वस्ति लेने की प्रक्रिया वस्ति प्रक्रिया के समान है।
- 5-10 ग्राम सैंधव लवण को तैल/घृत में मिला सकते हैं।
- अनुवासन वस्ति को धारण करने की अधिकतम अवधि 9 घण्टे है।
- निरुह वस्ति से कम जटिलताएं होती हैं।
- शाम के समय लघु और उष्ण आहार देते हैं।
- अगर वस्ति तत्काल वापस आ जाती है तो द्वितीय मात्रा प्रयोग कर सकते हैं।
- अगर यह 9 घण्टे के पश्चात भी धारण की जाती है तो कोई चिकित्सा की जरूरत नहीं है।

वस्ति पश्चात व्यवस्था

1. पथ्य–गर्म जल, दुग्ध, यूष (सूप) मांस रस।
2. वस्ति कर्म के पश्चात् निम्नलिखित क्रियाओं का त्याग करना चाहिए:
   - लम्बे समय तक बैठना।
   - लम्बे समय के लिए खड़ा रहना।
   - लम्बे समय के लिए अत्यधिक टहलना।
   - यात्रा और दिवा शयन।
   - मैथुन।
   - वेगों का धारण।
   - ऊष्ण और शीत का संपर्क।
   - क्रोध और शोक।
   - अपूर्ण आहार।

वस्तिकर्म के उपद्रव–

आयुर्वेदीय संहिताओं में बहुत सारी जटिलताओं का वर्णन है, उनमें से ज्यादातर ना के बराबर मिलती हैं और सामान्य अवस्था में नहीं होती हैं। सामान्य समस्या हैं–

- प्रयुक्त स्थान पर जलन की प्रतीति।
- असामान्य की प्रतीति।
- शिरःशूल।
- कब्ज।
- अतिसार।
- गुद प्रदेश से रक्तस्राव।

उपरोक्त वर्णित जटिलताओं के लिए उपयुक्त प्रबंधन करना चाहिए।

(ड.) शिरोविरेचन कर्म-नस्य कर्म–

नस्य या शिरोविरेचन पंचकर्म चिकित्सा के प्रधानकर्म में अंतिम अवस्था है।

नासा रन्ध्रों के माध्यम से औषध या औषधीय तैल का प्रयोग करना नस्य कहलाता है। शिर के रोगों के लिए यह अति विशिष्ट और उत्तम प्रक्रिया माना जाता है क्योंकि नासा मार्ग को शिर का द्वार कहा गया है। इसलिए सभी औषधियां जो नासा (नाक) के माध्यम से दी जाती हैं, शिर और इसके संबंधित भागों में फैल जाती हैं।

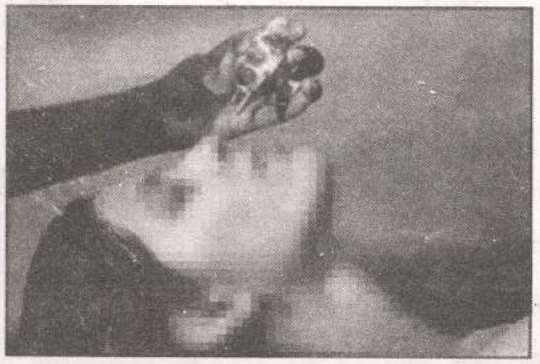

चित्र: शिरोविरेचन

नस्य के प्रकार तथा इनका निर्देश–

1. **नावन**–यह स्नेहन नस्य है, जिसमें औषधीय तैल की बूंदे नासा में प्रयोग की जाती हैं। यह निम्नलिखित अवस्थाओं में निर्देशित है।
   1. शिर:शूल।
   2. मोतियाबिंद (तिमिर) और केशपातन के रोकथाम हेतु।
   3. नेत्रशूल।
   4. नासा के रोगों में।
   5. वातज एवं पित्तज मुखरोग।

नावन नस्य का काल–

दोषों के अनुसार–

- कफज रोग में - मध्याह्न पूर्व (दोपहर से पूर्व)।
- पित्तज रोग में - मध्याह्न में।
- वातज रोग में - मध्याह्न पश्चात (दोपहर के बाद)।

ऋतुओं के अनुसार–

- शीतकाल - दोपहर में।
- वसन्त ऋतु - सुबह में।
- ग्रीष्म ऋतु - सायंकाल में।
- वर्षा ऋतु - जब सूर्य दिखाई दे।

मात्रा के अनुसार–

- उत्तम – 8 बिंदु।
- मध्यम – 6 बिंदु।
- हीन – 4 बिंदु।

2. **अवपीड़क नस्य**–इसमें औषधि के स्वरस को नासा मार्ग के माध्यम से दिया जाता है। यह निम्नांकित अवस्थाओं में निर्देशित है:

   1. मूर्च्छा 2. सन्यास 3. भ्रम 4. विषाक्तता 5. मदात्यय

3. **धूम्रपान**–इस नस्य में, औषध द्रव्य का चूर्ण नाड़ी यंत्र नलिका की सहायता से नासारन्ध्र के माध्यम से अंदर खींचते हैं। इसकी आवश्यक मात्रा 1 पल है। यह निम्नांकित अवस्थाओं में निर्देशित है।

   1. मानसिक रोगों में 2. विषाक्तता 3. क्रिमिज शिरोरोग इत्यादि।

4. **धूम्र नस्य**–इस प्रकार के नस्य में, औषधीय धूम को नासा के द्वारा ग्रहण करते हैं और मुख के द्वारा बाहर निकालते है। तत्पश्चात् धूम को मुख द्वारा लेते हैं और मुख द्वारा ही निकालते हैं। निम्न रोगों में निर्देशित हैं।

   शिरो रोग (शिर के रोग)

   नासा रोग (नासा के रोग)

   नेत्र रोग (आंख के रोग)

5. **मर्श-प्रतिमर्श**–नासा मार्ग द्वारा तैलों का नस्य के रूप में प्रयोग। मर्श नस्य में नासा के अंदर तैल डालने के लिए अंगुली का प्रयोग करते हैं। प्रतिमर्श नस्य तैल की बूंदों को नाक में डालते हैं। यह सहनीय और बहुत ज्यादा सुविधाजनक प्रक्रिया है। ये दोनों नस्य समान सिद्धांत का अनुसरण करते हैं लेकिन इनमें निम्नलिखित विभिन्नताएं हैं:

क्र.स.	प्रतिमर्श	मर्श
1.	दोष उत्पन्न नहीं होते हैं।	दोष उत्पन्न हो सकते हैं।
2.	मात्रा–2 बूंद सुबह और शाम के समय	मात्रा– उत्तममात्रा–10 बूंद मध्यममात्रा–8 बूंद हीनमात्रा–4 बूंद
3.	सभी ऋतुओं और सभी आयु वर्ग में निर्देशित है।	ऋतुओं और आयु का विचार करके आवश्यकता अनुसार।
4.	जटिलताएं उत्पन्न नहीं होती हैं।	उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं।
5.	कम प्रभावी क्रिया	अत्यधिक प्रभावी क्रिया।

प्रतिमर्श नस्य का निर्देश

1. व्यायाम के पश्चात।
2. मैथुन के पश्चात।
3. प्राकृतिक वेगों को निकालने के पश्चात।
4. कवल धारण के पश्चात।
5. वमन पश्चात।
6. भोजन के पश्चात।
7. हास्य के पश्चात।
8. दिवाशयन के पश्चात।
9. सोने के समय।

नस्य कर्म का वर्जन–निम्न अवस्थाओं में वर्जित है:

1. मंदाग्नि या अग्निमांद्य।
2. मद्य, घृत और जल का पान किया हो।
3. खाली पेट।
4. विषाक्तता।
5. थकान (श्रम)।
6. क्लम।
7. मैथुन के पश्चात।
8. नव ज्वर।
9. विरेचन पश्चात।
10. नव प्रतिश्याय।
11. प्रसूत ज्वर
12. अनिद्रा।
13. कास इत्यादि

शिरोविरेचन की प्रक्रिया–

1. सर्वप्रथम आहार देना चाहिए।
2. नासा के शोधन के लिए सही धूम्रपान करें।
3. रोगी को नीचे लिटा देना चाहिए।

4. मालिश के लिए कपाल पर तैल रखें।
5. मस्तक पर हल्के तैल की मालिश करें।
6. शिर, चेहरा, नाक, गर्दन और गले पर हल्के उष्ण स्वेद देना चाहिए।
7. स्वेदन पश्चात गर्दन, गाल और मस्तक पर हल्के हाथ से मालिश करनी चाहिए।
8. नस्य दिया जाता है–
   - 7 वर्ष से कम और 80 वर्ष के ऊपर की आयु वर्ग को नस्य नहीं देना चाहिए।
   - प्रतिमर्श नस्य; जन्म से मृत्यु तक दे सकते हैं।
   - धूम्रनस्य, 12 वर्ष के पश्चात देने का निर्देश है।
   - रोगी को सलाह दें कि प्रायोगिक धूम्रपान का प्रयोग करते हुए ऊष्ण जल से कवल भरें।

प्रत्येक नासा में विभिन्न प्रकार के नस्य द्रव्यों की मात्रा–

नस्य के प्रकार	अल्पशोधन	मध्यमशोधन	प्रभावीशोधन
नावन	1 बूंद	3 बूंद	8 बूंद
अवपीड़न	4 बूंद	6 बूंद	8 बूंद
प्रधमन	250 मिलीग्राम	375 मिलीग्राम	500 मिलीग्राम
मर्श	6 बूंद	8 बूंद	10 बूंद
प्रतिमर्श	2 बूंद	2 बूंद	2 बूंद

सामान्य नस्य कर्म का प्रभाव–

- लघुता की प्रतीति (हल्कापन महसूस होना)।
- निद्रा (अच्छी निद्रा आना)।
- प्रसन्नता।

पश्चात नस्य क्रम–

- धूम्रपान।
- कवल और गण्डूष धारण–औषधीय क्वाथ का कवल एवं गण्डूष।
- ऊष्ण और लघु आहार लेना चाहिए।
- निम्न का त्याग करें– शीतल जल, वैरोधिक आहार, धूल और धुंआ, तैल और घी, सूर्य और ताप, मद्य, शिरो-स्नान, शयन, क्रोध इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 6.1

क. सत्य /असत्य लिखें:

1. वमन चिकित्सा कफ दोष और कफ दोष से संबंधित विकारों से संबंधित है। ( )
2. मध्यम शोधन में आहारपूर्व अनुसूची अवधि का क्रम 7 दिन है। ( )
3. 12 वर्ष की आयु के पश्चात धूम्रनस्य बच्चों में निर्देशित है। ( )
4. अनुवासन की तुलना में निरूह वस्ति में अधिक जटिलताएं होती हैं। ( )
5. शारंगधर संहिता के अनुसार विरेचन कर्म के लिए क्वाथ की मध्यम मात्रा 40 मि. ली है। ( )

ख. निम्न का मिलान करें–

1. वमन	क. वातदोष
2. विरेचन	ख. तैल/औषधीय तैल
3. वस्तिकर्म	ग. कफ दोष
4. नावन	घ. चूर्ण प्रयोग करते है
5. धूम्रपान	ङ. पित्त दोष

आपने क्या सीखा–

इस अध्याय में आपने पंचकर्म की मुख्य प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। आभ्यांतर शोधन पांच शोधक प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है यथा–पंचकर्म। पांच मुख्य प्रक्रियायें है– वमन (उल्टी), विरेचन (दस्त), निरुह वस्ति (क्वाथ आधारित वस्ति), अनुवासन वस्ति (तैल आधारित वस्ति), शिरोविरेचन (सूंघना/छींकना)

इसे प्रत्येक कर्म के निर्देश तथा अनिर्देश, प्रकारों, विधियों और प्रकियाओं सहित प्रत्येक कर्म के सामान्य पहलू की दृष्टि से विभाजित किया गया है।

पाठांत प्रश्न–

1. वमन कर्म क्या है? संक्षेप में वमन कर्म के निर्देश, निषेध एवं प्रक्रिया के बारे में वर्णन करें।
2. विरेचन कर्म को विस्तार से वर्णित करें।

3. वस्ति कर्म के बारे में संक्षेप में लिखे एवं आस्थापन वस्ति का विस्तार से वर्णन करें।
4. नस्य कर्म क्या है? इसके प्रकारों, निर्देशो, निषेधों और प्रक्रियाओं का वर्णन करें।
5. इनके बारे में संक्षेप में लिखे–
   (क) मर्श और प्रतिमर्श। (ख) वस्ति कर्म के लिए जरूरी उपकरण।
   (ग) विरेचन द्रव्यों के प्रकार। (घ) वमन कर्म की विधियां।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर–

(क) (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य
(4) असत्य (5) सत्य

(ख) (1) ग (2) ङ (3) क
(4) ख (5) घ

7

पश्चात कर्म
(शल्य पश्चात कर्म)

पिछले अध्याय में आप प्रधानकर्म का अध्ययन कर चुके हैं। आप जानते हैं कि आंतरिक शोधन पांच शोधक प्रक्रियाओं यथा– पंचकर्म के द्वारा किया जाता है पांच मुख्य प्रक्रिया–वमन (उल्टी), विरेचन (दस्त), निरुहवस्ति (क्वाथ आधारित वस्ति), अनुवासन वस्ति (स्नेह या तैल आधारित वस्ति), शिरोविरेचन (सूंघना या छींकना)।

यह शरीर के मुख्य स्रोतसों से चयापचित उत्सर्जित उत्पादों को शरीर से निकालने की प्रक्रिया है। यथा– आमाशय–आंत्र नलिका और उर्ध्व श्वसन नलिका। वमन कर्म मुख्यतः कफ एवं इससे संबंधित विकारों के लिए प्रक्रिया है, जबकि विरेचन एवं वस्तिकर्म क्रमशः पित और वात दोष एवं उससे सबंधित विकारों से संबंधित है। अन्य शेष प्रक्रियाएं इन तीन प्रक्रियाओं के बाद होती हैं। शोधन पश्चात शरीर स्रोतस स्वच्छ, प्रभावी, उर्जायुक्त और चल हो जाते है। शरीर के उर्ध्वभाग की अशुद्धियां वमन कर्म द्वारा बाहर निकाली जाती हैं और अधोभाग (उदर) की अशुद्धियां विरेचन कर्म द्वारा निकाली जाती हैं। वस्तिकर्म का प्रयोग शरीर के विभिन्न भागों विशेष रूप से नाभि के नीचे स्थित अंगों में वात दोष के शमन के लिए किया जाता है। शिरोविरेचन का प्रयोग अक्षक प्रदेश के ऊपर के रोगों के लिए किया जाता है। इस अध्याय में हम विस्तार में पश्चात कर्म पर विचार विमर्श करेंगे।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे–

- पश्चात कर्म को समझना;
- संसर्जन क्रम की व्याख्या करना;
- स्वस्थवृत्त का वर्णन करना;
- संसर्जन कर्म और स्वस्थवृत्त पर प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करना।

7.1 पश्चात कर्म

पंचकर्म प्रक्रिया के अंत में क्षुधा (भूख) और पाचन क्षमता बहुत कम हो जाती है। इसलिए, रोगी की देखभाल के लिए विशेष ध्यान देने की जरूरत रहती है। इस उद्देश्य के लिए अग्नि के स्तर को स्थिर रखने के लिए एक विशेष आहार व्यवस्था निर्देशित की जाती है यथा– आमाशय–आंत्रगत जैविक अग्नि। इस प्रकार की आहार व्यवस्था पश्चात कर्म के रूप में जानी जाती है। यथा– पश्चात कर्म प्रक्रिया।

यहां यह आवश्यक है कि हम आहार व्यवस्था के नियम को जानें–

- प्रबल शुद्धि के लिए – 7 दिन = प्रधान शुद्धि
- मध्यम शुद्धि के लिए – 5 दिन = मध्यम शुद्धि
- अल्प शुद्धि के लिए – 3 दिन = हीन शुद्धि

फिर, पश्चात कर्म के पूर्ण होने के बाद रोगी सामान्य आहार व्यवस्था, जीवन शैली प्रक्रिया एवं कोई अन्य चिकित्सा प्रक्रिया, यदि आवश्यकता हो, ले सकता है। विशेष आहार व्यवस्था का पालन करके पाचन क्रिया को बनाये रखने की प्रक्रिया संसर्जन कर्म कहलाती है।

संसर्जन कर्म

संसर्जन कर्म से तात्पर्य विशिष्ट आहार व्यवस्था का पालन करके पाचन क्रिया की प्रक्रिया को बनाये रखना है।

संसर्जन कर्म की विधि

वमन और विरेचन कर्म अस्थायी रूप से जठराग्नि की क्रिया को मन्द कर देते है। इस अग्नि को उपयुक्त आहार विधि की सहायता से वापस सक्रिय किया जाता है। यह पेया, मण्ड और विलेपी का बना होता है। पेया का अर्थ एक पेय (drink) जो विभिन्न प्रकार के सूप का बना होता है जिसमें आवश्यकता के अनुसार जौ, चावल, अन्य अनाज एवं दाले और विभिन्न सब्जियां होती हैं। मण्ड–चावल का स्राव है। विलेपी–पतला पकाया हुआ दालों और अन्न का भाग है या विलेपी दालों और अनाज को पतला पकाया हुआ होता है।

आचार्य चरक ने पेया और विलेपी को एक क्रम में देने को कहा है। आचार्य चरक ने निम्नांकित संसर्जन कर्म विधि 7 दिन तक दिए जाने की सलाह दी है–

निम्नलिखित सारणी में दिन के अनुसार पश्चात कर्म व्यवस्था का क्रम दिया गया है–

दिन	अन्नकाल	प्रधानशुद्धि	मध्यशुद्धि	हीनशुद्धि
प्रथम दिन	1. सुबह	–	–	–
	2. शाम	पेया	पेया	पेया
दूसरे दिन	1. सुबह	पेया	पेया	विलेपी
	2. शाम	पेया	विलेपी	कृत–अकृत यूष

तीसरे दिन	1. सुबह	विलेपी	विलेपी	कृत–अकृत रस
	2. शाम	विलेपी	अकृतयूष	सामान्य आहार
चौथे दिन	1. सुबह	विलेपी	कृतयूष	–
	2. सायंकाल	अकृत यूष	अकृत मांस रस	
पांचवें दिन	1. सुबह	कृत यूष	कृत मांसरस	–
	2. सायंकाल	कृत यूष	सामान्य आहार	
छठें दिन	1. सुबह	अकृत मांस रस	–	–
	2. सायंकाल	कृत मांस रस	–	–
सातवें दिन	1. सुबह	कृत मांस रस	–	–
	2. सायंकाल	सामान्य आहार	–	–

पश्चात कर्म के बाद रोगी से यह आशा की जाती है कि वह अपने जीवन के संरक्षण के लिए आयुर्वेद में वर्णित सामान्य जीवन परिचर्या का पालन करें।

स्वस्थवृत

आयुर्वेद में सामान्य स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए जीवन परिचर्या का विस्तार से वर्णन है। इस प्रतिदिन की परिचर्या को स्वस्थवृत कहते हैं। यथा– सामाजिक आचरण, स्वच्छता एवं निवारक चिकित्सा।

(क) दिनचर्या – दिन का क्रम

(ख) रात्रिचर्या – रात्रि का क्रम

(ग) ऋतुचर्या – विभिन्न ऋतुओं में क्रम

(घ) सद्वृत्त – सामाजिक सामंजस्य के लिए आचरण

(क) दिनचर्या – (प्रतिदिन का क्रम)

- ब्रह्म मुहूर्त जागरण–सुबह में जल्दी बिस्तर से उठना
- मल त्याग/गुद प्रक्षालन, उत्सर्जन छिद्रों का धावन और हस्त धावन करना चाहिए।
- शुद्ध और स्वच्छ पानी से मुख साफ करना चाहिए।
- मसूड़ों को बिना नुकसान पहुंचाए ताजी लकड़ी की दातौन से दांत साफ करने चाहिए।
- जिह्वा निर्लेखनी से जिह्वा साफ करनी चाहिए।
- आंखों को शुद्ध, स्वच्छ और शीतल जल से साफ करना चाहिए।

चित्र 7.1 : दांतों की देखभाल

- आंखों को नेत्रविकारों से बचाने के लिए और नेत्र–शक्ति को बढ़ाने के लिए अंजन प्रयोग करना चाहिए।
- दृष्टि।
- मुख की दुर्गन्ध से बचने के लिए औषधीय धूम्रपान का प्रयोग करना चाहिए।
- मानसिक, शारीरिक और जैविक शक्ति (बल) बढ़ाने के लिए व्यायाम का निर्देश है।
- शक्ति।
- ग्रीष्म में शीतल जल और जाड़े में ऊष्ण जल से स्नान करना चाहिए।
- शिर, कान और पैरों में हमेशा तैल प्रयोग करना चाहिए।
- नित्य बालों में कंघी करनी चाहिए।
- नियमित सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करें।
- वस्त्र आरामदायक होने चाहिए।

चित्र 7.2 : सम्पूर्ण स्नान

(ख) रात्रिचर्या – (रात्रिक्रम)

- रात्रि में सोने जाने से पहले हमेशा ढीले वस्त्रों को पहनना चाहिए।
- सोने से पहले हाथ, पैर और मुख स्वच्छ पानी से धोने चाहिए।
- भोजन के पश्चात तुरन्त नहीं सोना चाहिए।
- रात्रि में बिस्तर पर जल्दी जाना चाहिए।
- दिन में जो भी गलती हुई हो उस पर विचार करना चाहिए।
- धार्मिक रूप से सोचें।
- अच्छे संतान के लिए संभोग क्रियायें करें।
- सोने से पहले भगवान की प्रार्थना करें।

(ग) ऋतुचर्या – विभिन्न ऋतुओं में क्रम

इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न ऋतुओं में दोषों को साम्यावस्था में बनाए रखना हैं। जो व्यक्ति ऋतुओं के अनुसार आहार और जीवन शैली का पालन करता है वह स्वस्थ रहता है। वर्ष में छः ऋतुएं होती हैं। ये शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म (आदान काल) और वर्षा, शरद और हेमन्त (विसर्ग काल) है। विसर्ग काल में शरीर का बल बढ़ता है जबकि आदान काल में शरीर बल कम होता है।

विभिन्न ऋतुओं में आहार क्रम और जीवन शैली

ऋतु	आहार क्रम	जीवन शैली
हेमन्त	• शरीर बल और पाचन क्षमता अच्छी रहती है। • तैलीय और गुरु आहार द्रव्यों का प्रयोग करें। • आनूप प्रदेश (बस्ती में रहने वाले) जानवरों का मांस और सूप का प्रयोग करें। • दूध, इक्षु, वसा और इनके उत्पादों का प्रयोग करें। • मद्य पदार्थ और ऊष्ण जल इस ऋतु में निर्देशित हैं।	• मकान पूर्ण रूप से ढ़का हो, और यह गर्म होना चाहिए। • शरीर पर उष्ण औषधियों के लेप का प्रयोग करें।
शिशिर	• शरीर बल और पाचन क्षमता अच्छी रहती है। • हेमन्त ऋतु में वर्णित परिचर्या का पालन करें। • कटु, तिक्त और कषाय रस का प्रतिदिन की चर्या में त्याग करें। • पीने के लिए शीतल जल का प्रयोग न करें।	• निवास स्थान गर्म और शीतल हवाओं से रहित होना चाहिए। • शेष परिचर्या हेमन्त ऋतु के समान होनी चाहिए।
बसन्त	• शरीर बल और पाचन क्षमता मध्यम होती है। • आहार में गेहूं और जौ प्रयोग करें। • मांस और सूप निर्देशित है। • मद्य निर्मित पदार्थ जैसे–माध्वीक एवं सिंधु प्रयोग करना चाहिए। • गुरु (Heavy), अम्ल (Sour), स्निग्ध (Oily) मधुर (Sweet) आहार और दिवाशयन का त्याग करना चाहिए। • शहद का सेवन निर्देशित है।	• ऋतुकालीन उल्टी कराये यथा– वमन • नित्य व्यायाम, मर्दन और औषधीय धूम्रपान सेवन करें। • प्रकृति की सुन्दरता को देखना।
ग्रीष्म	• इस ऋतु में शरीर बल और पाचन क्षमता बहुत दुर्बल होता है। • लघु आहार और मधुर रस का सेवन करें। • इक्षु रस मिश्रित द्रव का प्रयोग करें। • मांस और मांसाहार सूप का त्याग करें। • मद्य से निर्मित पदार्थों का त्याग करें।	• शीतल जगहों पर निवास करें जो उपयुक्त वातायन युक्त हो। • शरीर पर चन्दन जैसे शीतल द्रव्यों का लेप करें।

वर्षा	• इस ऋतु में शरीर बल और पाचन क्षमता बहुत दुर्बल होती है। • अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), तैलीय खाद्य पदार्थ और पुराने चावल का नित्य सेवन करें। • आहार और मांसाहार का सेवन अल्प मात्रा में करें।	• उबला हुआ शीतल जल प्रयोग करें। • हल्के कपड़े पहनें। • गंध द्रव्य (सुगन्धित द्रव्य) एवं माला का सेवन करें। • दिवाशयन, नदी जल में स्नान, और खुले में शयन वर्जनीय है।
शरद	• शरीर बल और पाचन क्षमता मध्यम होती है। • शरद में मधुर, तिक्त रस एवं लघु–शीतल पित्तशामक अन्नपान मात्रानुसार सेवन करें • वसा, तैल एवं मांस रस का सेवन वर्जनीय है।	• इस ऋतु में दिवाशयन और क्षार, दधि तथा पूर्वी हवा का सेवन वर्जित है। • तलाब और झीलों की सुन्दरता को देखें।

आयुर्वेद में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि ऋतुसंधि काल में– दो ऋतुओं के बीच का संक्रमण काल–में व्याधियां होना बहुत सामान्य है। इस काल में, अगर लोग परिचर्या का पालन करें, जो संहिताओं में वर्णित है, तो वे कभी दुर्बलता/रोग से पीड़ित नहीं होंगे।

(घ) सद्वृत्त (आचरण)

सद्वृत्त प्रथमतया सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित है। यह मानते है कि सद्वृत्त मस्तिष्क एवं शरीर पर एक साथ प्रभाव डालता है। इसका अभ्यास सामाजिक आचरण को भी सुधारता है। इस संबंध में सद्वृत्त का महत्त्वपूर्ण पहलू निम्नलिखित है–

- ईश्वर की पूजा करें।
- बड़ों और सम्मानित लोगों का आदर करें ।
- सत्य और मधुर बोलें।
- अहिंसा का पालन करें।
- क्रोध का त्याग करें।
- मद्य, मैथुन और अत्यधिक श्रम का अधिक सेवन वर्जनीय है।
- शांतिपूर्ण माहौल बनाए रखें।
- मंत्र और जप का अभ्यास करें।

सद्वृत्त के इस पहलू के अलावा, यह जीवधारियों के प्रति दयालुता, संतुलित निद्रा, नियमित पोषक आहार का सेवन, मौसम और वातावरण की देखभाल, विनम्र और अच्छा व्यवहारिक होना, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन और ईश्वर को मानने वालों का सम्मान करना भी इसके अंतर्गत आता है। वह व्यक्ति जो इस प्रकार से रहता है और अच्छा आचरण करता है उसे

रसायन प्रभाव प्राप्त होता है। यथा– दीर्घायु, व्याधिक्षमत्व, और बुद्धिजीवी शक्ति बिना किसी औषध का प्रयोग किये उसे प्राप्त होती है।

पश्चात कर्म और रोगी द्वारा बाद में सामान्य नियमित प्रक्रिया का पालन करके पंचकर्म चिकित्सा के संपूर्ण पहलू को देखा जा चुका है।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. आप पश्चात कर्म से क्या समझते हैं–

.....

.....

2. संसर्जन कर्म को परिभाषित करें।

.....

.....

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में, हम पश्चात कर्म पर चर्चा कर चुके हैं। यह प्रधानकर्म के बाद चिकित्सा पश्चात आहार परिचर्या के द्वारा सामान्य पाचन क्षमता प्राप्त करने के लिए व्यवहृत है। यह पश्चात कर्म के बाद सामान्य परिचर्या पालन करने का भी वर्णन करती है। आयुर्वेद में स्वस्थवृत के रूप में वर्णित है और दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या और सद्वृत्त से बना है।

पाठांत प्रश्न

1. संसर्जन कर्म की व्याख्या करें।
2. स्वस्थवृत्त का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. पंचकर्म प्रक्रिया के अंत में क्षुधा (भूख) और पाचन क्षमता बहुत कम हो जाती है, इसलिए रोगी की देखभाल के लिए विशेष ध्यान देने की जरूरत रहती है। इस उद्देश्य के लिए एक विशेष आहार परिचर्या अग्नि के स्तर को स्थिर रखने के लिए निर्देश करते है यथा– आमाशय–आंत्रगत जैविक अग्नि। इस प्रकार की आहार परिचर्या को पश्चात कर्म यथा–पश्चात कर्म प्रक्रिया के रूप में जानते हैं।

2. आयुर्वेद में सामान्य स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए जीवन परिचर्या का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह नियमित परिचर्या स्वस्थवृत्त कहलाती है यथा–सामाजिक आचरण, स्वच्छता और निवारक चिकित्सा –

   (क) दिनचर्या – दिवा परिचर्या।

   (ख) रात्रिचर्या – रात्रि परिचर्या।

   (ग) ऋतुचर्या – विभिन्न ऋतुओं में परिचर्या।

   (घ) सद्वृत्त – सामाजिक सामंजस्य के लिए अच्छा आचरण।

8

पंचकर्म चिकित्सा में प्रयोग होने वाले औषधीय योग

आयुर्वेद सभी पदार्थों को औषध मानता है, अगर वे विशेष निर्देश और उपयुक्त योग यथा-युक्ति के साथ प्रयोग होते हैं। चरक ने उद्घोषित किया है कि इस पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो औषध नहीं है और सभी आहार एवं औषध द्रव्यों (पदार्थों) को तीन मुख्य भागों में वर्गीकृत किया गया है :

- जांतव द्रव्य- मधु, पित्त, वसा, दुग्ध, मूत्र, वीर्य, अंडा, सींग इत्यादि।

मदनफल

वच

मधुयष्ठि

मधुयष्ठि काण्ड

चित्र 8.1

- वानस्पतिक द्रव्य- क्षुप, गुल्म और वृक्ष- यथा- मूल, पत्तियां, छाल, निर्यास, स्वरस (Juice), अंकुरित धान्य, गोंद, फल, तैल इत्यादि।

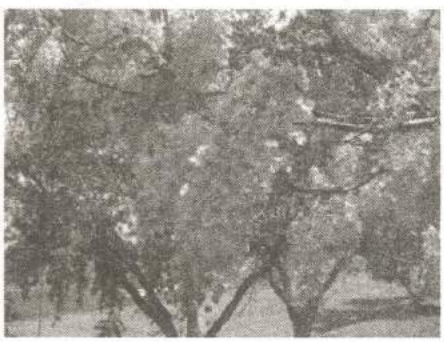

अमलतास

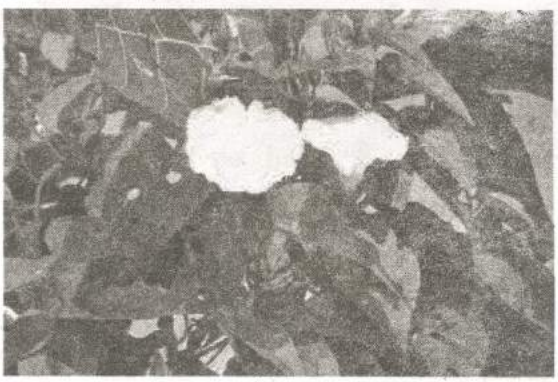

निशोथ

एरण्ड

जायफल

स्नुही

कुटकी

चित्र 8.2

- पार्थिव द्रव्य- पारा, स्वर्ण, चांदी, लौह, रत्न, नमक, इत्यादि आयुर्वेद में बहुत सारे योग वर्णित हैं जो पंचकर्म-प्रक्रिया के दौरान स्थानिक एवं संस्थानिक मार्ग के लिए प्रयोग किये जाते हैं। अभ्यास में विभिन्न योगों यथा–स्वरस (Expressed Juice), कल्क (Paste), क्वाथ (Decoction), हिम (Cold-infusion), फाण्ट (Infusion) और इनकी कल्पनाएं–यथा–चूर्ण (Powder), वटी (Pills), क्षीरपाक (Decoction in milk), घृतपाक (Medicated Ghrat), तैलपाक (औषधीय तैल), आसव (Medicated preparation) किण्वन प्रक्रिया द्वारा बनाते हैं। विभिन्न योग (निर्मित द्रव्य) उनके उपयुक्त उदाहरण के साथ इस अध्याय में वर्णित हैं।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद हम जानेंगे–

- आयुर्वेद की मूलभूत भेषज्य कल्पनाएँ।
- विभिन्न औषध निर्माण की विधि की व्याख्या।
- पंचकर्म चिकित्सा में तैयार भिन्न-भिन्न औषधियों का प्रयोग।
- स्नेह पाक की विभिन्न स्तर पर पहचान करना।

8.1 विभिन्न योगों की मूलभूत अवधारणा

आयुर्वेदीय संहिताओं ने वानस्पतिक, जांतव और पार्थिव द्रव्यों से उत्पन्न प्राकृतिक उत्पादों का एक विस्तृत क्षेत्र वर्णित किया है।

पंचकर्म चिकित्सा में मुख्यत: वानस्पतिक और जांतव उत्पादों को प्रथमतया अभ्यास में स्वास्थ्य एवं रोग के विभिन्न अवस्थाओं में उपयोग करते हैं। आयुर्वेद में पांच मूलभूत विधियाँ ताजे वानस्पतिक द्रव्यों के योग बनाने के लिए वर्णित है।

पांच मुख्य विधियां नीचे दी गई हैं:

1. स्वरस (Expressed juice)।
2. कल्क (Paste)।
3. क्वाथ (Decoction)।
4. हिम (Cold infusion)।
5. फाण्ट (Hot infusion)।

वानस्पतिक योगों के पांच स्वरूपों को सम्मिलित रूप से पञ्चकषाय कल्पना कहते हैं। यथा–वानस्पतिक योगों के पांच स्वरूप इसके साथ में, औषधियां क्षीरपाक के रूप में भी दूध में क्वाथ करके बनायी जाती है। अवलेह (चाटने के लिए अर्धठोस योग), पुटपाक (गर्म करके निचोड़कर निकाला रस), आसव (शीत किण्वन योग), अरिष्ट (गर्म किण्वित योग), औषधीय तैल और घृत। इन योगों के निर्माण के पीछे जो विचार है उससे औषधियों की कार्यकारी क्षमता बढ़ती है और इनका दीर्घकाल तक प्रयोग होता है।

1. स्वरस (Expressed juice)–

ताजे द्रव्यों को पीसकर और फिर निचोड़कर जो रस निकलता है उसे कपड़े से छानकर बनाते हैं। प्रयोग की दृष्टि से हर बार ताजे स्वरस का प्रयोग करना अच्छा होता है। क्योंकि एक घण्टे के अंदर इनकी कार्यकारी शक्ति नष्ट हो जाती है।

मात्रा–20 ग्राम रस ताजी औषधि के लिए 12 घण्टे के अन्तराल पर और 40 ग्राम सूखी औषधि का रस 12 घण्टे के अन्तराल पर

उदाहरण

- रक्तपित्त और श्वसन संस्थान की व्याधियों में वासा स्वरस।
- मलेरिया ज्वर में तुलसीपत्र और द्रोणपुष्पी स्वरस।
- मानसिक विकारों में ब्राह्मी स्वरस।
- मधुमेह और स्त्रियों में यूरिया की अधिकता में आमलकी स्वरस।

2. कल्क (Paste)

सामान्यत: यह ताजे द्रव्यों को सिल पर पीसकर या सूखे द्रव्यों के चूर्णों को जलादि से पीसकर पतला लेप बनाकर बनाया जाता है। चिकित्सा के लिए प्रतिदिन ताजा कल्क बनाया जाता है क्योंकि 6 घण्टे बाद यह अपनी कार्यकारी क्षमता खो देते है।

मात्रा–10 ग्राम 12 घण्टे के अन्तराल पर।

उदाहरण

- गृध्रसी और कटिशूल (त्रिकशूल) में महानिम्ब कल्क।

- तन्त्रिका-पेशीगत विकारों में रसोन कल्क।
- आघात और रक्तस्राव की अवस्था में लाक्षा कल्क।

3. **क्वाथ (Decoction)**

सामान्य नियम में क्वाथ: 1 भाग सूखे द्रव्य का बारीक चूर्ण और इसके 16 गुना जल मिला कर उबालते हैं। जब चौथाई भाग शेष रह जाता है तब उसे कपड़े से छान लेते हैं और इसको चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। क्वाथ योग 12 घण्टे तक प्रयोग कर सकते हैं।

मात्रा–40 मिली ली. 12 घण्टे के अन्तराल पर।

उदाहरण

- वातिक ज्वर में गुडुच्यादि क्वाथ।
- पैत्तिक ज्वर में पर्पटादिक्वाथ।
- कफज ज्वर में पटोलादि क्वाथ।
- सन्निपातिक ज्वर और शोथ में दशमूल क्वाथ।
- कामला और पाण्डु (Anaemia) में फलत्रिकादि क्वाथ।
- शोथयुक्त अवस्था में पुनर्नवादि क्वाथ।
- सभी प्रकार के वातिक रोगों में महारास्नादि क्वाथ।
- मूत्रविकारों में वरुण शिग्रु क्वाथ।

4. **हिम (Cold infusion)–**

एक भाग औषध चूर्ण को छः भाग पानी में मिलाकर इसे रातभर के लिए छोड़ दे। सुबह इसको छानने के बाद चिकित्सा के लिए प्रयोग कर सकते हैं। इसको प्रतिदिन बनाना चाहिए।

मात्रा–80 मिली. 12 घण्टे के अन्तराल पर।

उदाहरण

- मानसिक विकारों के लिए जटामांसी चूर्ण हिम।
- आन्तरिक दाह के लिए धान्यक हिम।
- प्रसव पश्चात वेदना के लिए यवानीषाडव हिम।

5. **फाण्ट (Hot infusion)**

1 भाग औषध का चूर्ण 8 भाग उष्ण जल में मिलाकर यह बनाया जाता है। इसे कुछ समय के लिए कमरे के तापमान पर ठण्डा करने के लिए रखते हैं। इसको कपड़े से

छानने के बाद द्रव भाग का प्रयोग करते हैं। इसको प्रतिदिन आवश्यक रूप से बनाना चाहिए। अभ्यास में यह अच्छा है कि ताजे ऊष्ण फाण्ट का प्रयोग करें, क्योंकि इसकी कार्यकारी शक्ति एक घण्टे के अंदर नष्ट हो जाता है।

मात्रा– 80 मिली 12 घण्टे के अन्तराल पर।

उदाहरण

- जीर्ण मदात्यय में खजूरादि मन्थ।
- आमवात और सन्धिवात में पंचकोल चूर्ण फाण्ट।
- प्रसूति ज्वर में शुण्ठी फाण्ट।

8.2 अन्य आयुर्वेदिक भेषजीय योग और इनका निर्देश

(i) **चूर्ण (Powder)–**

यह सूखे द्रव्यों से बनाया जाता है। वानस्पतिक द्रव्यों के एकल या मिश्रण को पीसते हैं। पीसे हुए द्रव्य को कपड़े या छननी के द्वारा छानकर प्राप्त कर लेते हैं। चूर्ण को उल्लेखित अवस्था के अनुसार संग्रह करते हैं और इसको छः मास से एक वर्ष तक प्रयोग कर सकते हैं।

मात्रा– 3-6 ग्राम 12 घण्टे के अन्तराल पर

उदाहरण

- अपच, उदरशूल में हिंग्वष्टक चूर्ण।
- आमवात और वातरक्त में अजमोदादि चूर्ण।
- अग्निमांद्य और पाचक के रूप में लवणभास्कर चूर्ण।
- वेदना निवारण में यवानीषाडव चूर्ण।
- मैथुन शक्ति बढ़ाने के लिए कपिकच्छू चूर्ण।

(ii) **क्षीरपाक (Decoction in milk)**

क्षीरपाक बनाने के लिए औषध द्रव्य 1 भाग, दूध 8 भाग और जल 32 भाग लेते हैं। अब इसको पानी के वष्पित होने और दूध शेष रहने तक गर्म करते है। छानने के पश्चात इसको 12 घण्टे तक प्रयोग करते हैं।

मात्रा– 40 मिली. 12 घण्टे के अन्तराल पर।

उदाहरण

- हृदय रोगों में अर्जुन क्षीरपाक।

- तन्त्रिका-पेशी विकारों में रसोन क्षीरपाक।
- आमाशय-आन्त्र नालिका विकारों में पिप्पली क्षीरपाक।

(iii) **अवलेह (Thick/Semisolid paste)**

अवलेह को बनाने के लिए औषध द्रव्यों के क्वाथ को छानते हैं और छनित भाग को पुनः गाढ़ा लेप की तरह होने तक उबालते हैं। शर्करा को मिलाकर इसको प्रयोग कर सकते हैं।

मात्रा– 10-20 ग्राम प्रतिदिन (24 घंटे के लिए)

उदाहरण

- कास में च्यवनप्राश अवलेह।
- रक्तपित्त विकारों में कूष्माण्ड अवलेह।
- श्वसन विकार में वासा अवलेह।
- प्रतिश्याय में चित्रक हरीतकी।
- मैथुन जन्य दुर्बलता में कौञ्चपाक।

(iv) **वटी (Pills)**

औषध द्रव्यों के क्वाथ को भस्म के साथ या बिना भस्म के साथ अधिाक गाढ़ा (ठोस जैसा) करके उसको बनाते है। और फिर वटी बनाने के लिए कुछ चूर्ण मिलाते है। कभी-कभी यह चूर्ण द्रव्य में शहद या गुग्गुलु मिलाकर भी बनाया जा सकता है।

मात्रा– 250-500 मिली ग्राम 12 घण्टे के अन्तराल पर

उदाहरण

- ज्वर, विषाक्तता, अतिसार, प्रवाहिका में संजीवनी वटी।
- अम्लपित्त, अम्लता के कारण उदरशूल में शंखवटी।
- मधुमेह और मूत्रविकारों में शिलाजत्वादि वटी।
- मैथुन जन्य दुर्बलता में कामेश्वर वटी।

(v) **पुटपाक (Hot expressed Juice)–**

औषध द्रव्य का मिश्रण बना लेते हैं। अब इसको पत्ती में लपेट हल्का बांध देते हैं और इसके ऊपर मिट्टी का लेप लगा देते हैं। इसको सुखाकर गाय के उपलों की अग्नि में भूनते हैं, जब मिट्टी लाल रंग की दिखने लगे तब इसको तोड़ते हैं और भुने हुए औषध

को निचोड़कर रस निकाल लेते हैं एवं इसका चिकित्सा के लिए प्रयोग करते हैं।

मात्रा– 20 मिलीलीटर 12 घण्टे के अन्तराल पर

उदाहरण

- रक्तपित्त विकारों में वासापुटपाक स्वरस।
- आमवात, स्त्रीरोगों एवं अन्य संधिगत वेदनायुक्त विकारों में शुण्ठीपुटपाक स्वरस।
- अर्श रोग में सूरणपुटपाक स्वरस।

(vi) **आसव (Medicated spirituous preparation)**

ये किण्वन प्रक्रिया द्वारा विशेष रूप से शरद और बसन्त ऋतु में बनाये जाते हैं। तापमान 30-35 डिग्री सेल्सियस के लगभग जरूरी है। पूर्ण किण्वन के लिए एक महीने का समय लगता है और बनने के कम से कम 3 माह के पश्चात इसको चिकित्सा के लिए प्रयोग कर सकते हैं। औषध द्रव्य को बिना उबाले आसव तैयार किया जाता है जबकि अरिष्ट उबले जल में बनाते हैं। अरिष्ट गुणों में आसव की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

मात्रा– 15-30 मिलीलीटर भोजन के बाद सम-जल मिलाकर।

उदाहरण

- संधि शूल और स्त्री रोगों में दशमूलारिष्ट।
- व्याधि क्षमता को बढ़ाने वाला और रसायन के रूप में अश्वगंधारिष्ट।
- श्वास विकारों में कनकासव।
- विभिन्न प्रकार के ज्वरों में अमृतारिष्ट।
- श्वेतप्रदर और कष्टार्तव में लोध्रासव एवं पत्रांगासव।

(vii) **स्नेहपाक (Oily/fatty preparations) घृतपाक (Medicated Ghrit)–**

सर्वप्रथम लोहे की कड़ाही में हल्के अग्नि पर घृत गर्म करते हैं। आवश्यक कल्क और द्रव को मिलाते हैं और दोनों को जलीय भाग उड़ जाने तक गर्म करते हैं तथा घृत झाग से मुक्त हो जाय। तब इसको कपड़े से छान लेते हैं तथा इसको चिकित्सकीय अभ्यास में प्रयोग के लिए संरक्षित कर लेते हैं।

मात्रा– 12 घण्टे के अन्तराल पर या आवश्यकता के अनुसार।

उदाहरण

- अतिसार, अर्श, बिबन्ध इत्यादि में चांगेरी घृत।
- वातरक्त और त्वक्रोगों में महातिक्तक घृत।

(viii) **तैलपाक (Medicated Oil)–**

सामान्यत: तैलपाक के लिए तिल तैल का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम तैल को जलीय भाग खत्म करने तक उबालते हैं और फिर आवश्यक औषध पदार्थ की बराबर मात्रा इसमें मिलाते है और 24 घण्टे के लिए इसको छोड़ देते है। तत्पश्चात मिश्रण को जल के (उड़ने) वाष्पन होने तक उबालते है। अब इसको छानते है और इसमें आवश्यक पदार्थ कल्क क्वाथ इत्यादि के रूप में मिलाते है और इसको पुन: जलीय भाग के वाष्पन होने तक उबालते है। शीतल करने के पश्चात तैल को कपड़े से छानते हैं और इसको बाह्य एवं आभ्यान्तर रूप से रोग एवं योग के आधार पर प्रयोग करते हैं।

मात्रा– 5 से 10 मिलीलीटर 12 घण्टे अंतराल पर या चिकित्सक के परामर्शानुसार

उदाहरण

- वातरक्त में पिण्ड तैल।
- संधिशूल में पंचगुण तैल।
- मानसिक विकारों में ब्राह्मी तैल।
- केशपातन और केश सफेद होने में भृंगराज तैल।

8.3 तैलीय योग के प्रकार और इनका प्रयोग

चिकित्सकीय प्रयोगों के आधार पर तैलीय योग तीन प्रकार के होते हैं:

– **मृदुपाक**–तैल के निर्माण के दौरान, इसमें कल्क की सान्द्रता (कठिनता) कुछ जलीय होता है।

यह नस्यकर्म में प्रयोग होता है।

– **मध्यमपाक**–तैल निर्माण के दौरान, कल्क की सान्द्रता अर्द्धठोस होता है।

यह वस्तिकर्म और मुख मार्ग के लिए प्रयोग होता है।

– **खरपाक**–तैल के निर्माण के दौरान, कल्क की सान्द्रता (कठिनता) वर्ति जैसी होती है।

यह अभ्यंग के रूप में बाह्य प्रयोग के लिए प्रयोग करते है।

8.4 आहारीय योगों के प्रकार

– **पेया**–यह 1 भाग टूटे चावल और 14 भाग जल को हल्का उबाल करके बनाया जाता है। यह चावल का पतला भाग होता है, जिसमें ठोस भाग भी होता है।

– **विलेपी**–यह चावल का योग है जिसमें पेया की अपेक्षा ठोस भाग ज्यादा होता है। और यह 1 भाग चावल का और 4 भाग जल का मिलाकर बनाया जाता है और चावल के पूर्णरूप से मुलायम हो जाने तक उबालते हैं।

- **यूष**–एक अर्द्धठोस योग जो किसी भी उपयुक्त प्रकार की दाल को उबालकर प्राप्त करते हैं।
- **कृतयूष**–यह दाल 50 ग्राम, पिप्पली चूर्ण 6 ग्राम, शुण्ठी चूर्ण 6 ग्राम, जल 750 ग्राम, तैल/घी और नमक उचित मात्रा में मिलाकर उबालते हैं।
- **अकृतयूष**–यह ऊपर वर्णित सभी चीजों से रहित होता है, यह सादा अच्छी तरह उबली दालें होती हैं।

8.5 सामान्य औषधीय योगों की सूची और इनका पंचकर्म प्रक्रिया में प्रयोग

पूर्वकर्म प्रारम्भिक प्रक्रियायें–

1. **दीपन-पाचन**–चित्रकादिवटी, त्रिकटु चूर्ण, पंचकोल चूर्ण
2. **स्नेहन कर्म**–

(क) **स्नेहपान**–तैलीय औषधियों द्वारा अभ्यान्तर स्नेहन विशिष्ट रोगों के अनुसार इसकी जरूरत को परिवर्तित करते हैं:–

- तमक श्वास रोग में वासाघृत।
- त्वक् रोगों में पञ्चतिक्त घृत।
- अपस्मार रोग में कल्याण घृत, पञ्चगव्यघृत।
- उन्माद में ब्राह्मीघृत।
- मस्तिष्क शिराघात में तिल तैल और क्षीरबला तैल।
- आमवात, सन्धिवात में एरण्ड तैल।
- यकृत विकारों में दाड़िम घृत।
- ग्रहणी रोग में पञ्चमूलादि घृत।
- स्त्रीरोगों में क्ष्मर्यादिघृत।
- मधुमेह और मोटापा सम्बिधित रोगों में पिप्पलीघृत।

(ख) **स्नेह (अभ्यंग)**–अभ्यंग के रूप में तैल का बाह्य प्रयोग-

- वात विकार में–नारायण तैल, महानारायण तैल, पंचगुण तैल इत्यादि।
- पित्त विकार में–क्षीरबला तैल, चन्दनादि तैल इत्यादि।
- कफज विकार में–सहचरादि तैल प्रयोग कर सकते हैं।

3. **स्वेदन कर्म–**

(क) **सामावस्था में**–रुक्ष बालुका स्वेद प्रयोग करते हैं–यह शुष्क ताप स्वेदन कहलाता है–नवीन आमवात, नवीन आमजन्य रोगों में।

(ख) **निराम अवस्था में**–स्वेदन के लिए वानस्पतिक द्रव्यों का क्वाथ प्रयोग करते हैं। इसको आर्द्र स्वेदन भी कहते हैं। इसके सामान्य उदाहरण नीचे दिये गए हैं:–

- पेशी, सन्धियों, स्नायुओं और रज्जुओं के वेदनायुक्त अवस्था में दशमूल क्वाथ से स्वेदन
- ग्रीवाकशेरुका क्षय, त्रिकशूल इत्यादि में रास्नासप्तक क्वाथ से स्वेदन।
- गृघसी (Sciatica) में पारिजात पत्र क्वाथ से स्वेदन।

पंचकर्म–पांच जैव-शोधक प्रक्रियायें–

पंचकर्म में, निम्न पांच जैव-शोधक प्रक्रियायें हैं।

(1) **वमन कर्म** (उल्टी) (emesis)

सभी प्रकार के वमन द्रव्यों में मदनफल चूर्ण श्रेष्ठ है। प्रभावी वामक योग नीचे दिये गये है।

मदनफल चूर्ण : 5 से 12 ग्राम।

वचा चूर्ण : 3 से 5 ग्राम।

मधुयष्टी चूर्ण : 5 से 10 ग्राम।

सैंधव लवण : 5 से 10 ग्राम।

शहद : 20 मिली लीटर और लगभग 5 लीटर का दूध।

अन्य वामक द्रव्य गुनगुना नमकीन जल, इक्षु रस, तिल अलाबु, देवदाली, धमार्गव चूर्ण इत्यादि है।

(2) **विरेचन कर्म** (Purgation)

(क) **त्रिवृत चूर्ण**– 10 से 15 ग्राम - मृदुकोष्ठ के लिए ।

(ख) **त्रिवृत चूर्ण**–10 ग्राम और एरण्डतैल 30 मिलीमीटर - मध्यम-कोष्ठ के लिए।

(ग) **एरण्ड तैल**– 20 मिलीलीटर और 125 मिग्रा. इच्छाभेदी रस - क्रूरकोष्ठ के लिए।

(3) **निरुह वस्ति** – (क्वाथ आधारित वस्ति)

इस प्रकार के वस्ति कर्म में मुख्यत: क्वाथ को वरीयता देते हैं लेकिन कुछ शहद, सैंधव लवण, औषधीय कल्क और तैल की कुछ मात्रा भी प्रयोग करते हैं। तैल की मात्रा व्यक्ति की प्रकृति पर आधारित होती है। जैसे कि–

- **वातिक पुरुष और वात प्रधान रोग में**–निरुह वस्ति के समय क्वाथ में तैल की 200 मिली. मात्रा मिलाते हैं।
- **पैत्तिक पुरुष**–निरुह वस्ति के दौरान क्वाथ में तैल की 130 मिली लीटर मात्रा मिलाते हैं।
- **कफज पुरुष और कफ प्रधान रोगों में**–निरुह वस्ति के समय क्वाथ में तैल की 100 मिली. मात्रा मिलाते हैं।

निम्नांकित क्वाथों को विभिन्न चिकित्सा अवस्थाओं में प्रयोग करते हैं–

- वातिक विकारों में दशमूल क्वाथ।
- पेशी विकारों में बलामूल क्वाथ।
- आमजन्य वातिक विकारों में महारास्नादि क्वाथ।
- गृध्रसी विकार में पारिजातपत्र क्वाथ।

(4) **अनुवासन वस्ति (औषधीय तैल आधारित वस्ति)**

यह स्वस्थ एवं रोगी दोनों विकारों के लिए निर्देशित है, यह मुख्यत: तैल आधारित है। निम्नलिखित तैलों को विभिन्न अवस्थाओं में प्रयोग करते हैं।

- स्वस्थ एवं वातिक विकारों में तिल तैल प्रयोग करते हैं।
- संधि और पेशीशूल इत्यादि में महानारायण तैल प्रयोग करते हैं।
- पेशी शोष (Muscular Atrophy) में बला तैल, महामाष तैल प्रयोग करते हैं।
- आघातजन्य अवस्थाओं एवं क्षीणता में लाक्षादि तैल प्रयोग करते हैं।
- तंत्रिका विकृति जन्य अवस्थओं में प्रसारणी तैल प्रयोग करते हैं।

(5) **शिरोविरेचन** (Nasal Snuffing)

यह विशेषरूप से कान, नाक, गला, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र इत्यादि रोगों के लिए है। सामान्य शिरोविरेचन योग निम्नांकित है।

(i) **औषधीय तैल**–षडबिन्दु तैल, अणु तैल, ज्योतिष्मति तैल।

(ii) **ताजा स्वरस**–दूर्वा स्वरस, देवदाली स्वरस।

(iii) **औषधीय चूर्ण**–अपामार्ग चूर्ण, अपराजिता मूल चूर्ण, तमालपत्र चूर्ण।

(iv) **औषधीय धूम्र**–भारङ्ग्यादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण।

(v) **मर्श/प्रतिमर्श**–तैल बहुत अल्प मात्रा में प्रयोग करते है।

पश्चात कर्म (Post operative regimens)

यह सामान्यत: विशेष आहार परिचर्या द्वारा अग्नि की सामान्य अवस्था को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। सामान्य पंचकर्म प्रक्रिया के पश्चात विभिन्न आहारीय योग रोगी को विभिन्न अन्नकालों में 7 दिन तक देते हैं।

- पेया 3 समय यथा सायंकाल, सुबह एवं सायंकाल, प्रथम दिन। यह सायंकाल में प्रारंभ करते हैं।
- विलेपी-3 समय सुबह, सायंकाल, सुबह। यह तीसरे दिन सुबह से प्रारम्भ करते हैं।
- अकृत यूष प्रथम बार चौथे दिन सायंकाल में।
- कृत यूष दो बार पांचवें दिन सुबह और सायंकाल में।
- कृशरा तीन बार छठे दिन सुबह एवं सांयकाल और 7वें दिन सुबह में।
- सामान्य आहार-7वें दिन सायंकाल से प्रारंभ करते हैं।

जब रोगी मांसाहारी हो, तो कृशरा के स्थान पर अकृत मांसरस और कृत मांसरस देते हैं।

पाठगत प्रश्न 8.1

सही विकल्प चिह्नित करें –

1. नीचे दिये गये द्रव्यों में जांतव द्रव्य है।
   (क) पित्त (ख) नमक (ग) मूल (घ) स्वर्ण
2. मूल वानस्पतिक योग ..... प्रकार के होते हैं।
   (क) 2 (ख) 3 (ग) 5 (घ) 6
3. गर्म निचोड़कर निकला स्वरस .....कहलाता है।
   (क) स्वरस (ख) पुटपाक (ग) कल्क (घ) क्वाथ
4. क्वाथ के निर्माण के दौरान जल का कितना भाग प्रयोग किया जाता हैं।
   (क) 8 भाग (ख) 32 भाग (ग) 16 भाग (घ) कोई नहीं
5. पंचकर्म चिकित्सा में प्रारंभिक प्रक्रिया के रूप में कौन-सा घृत निर्देशित है।
   (क) अमृतादि घृत (ख) त्रिफलाघृत (ग) वासाघृत (घ) ब्राह्मीघृत

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में, हमने आयुर्वेदिक औषधि निर्माण के मूलभूत अवधारणाओं को वानस्पतिक योगों के पांच स्वरूपों के साथ-साथ अन्य औषधीय योगों के निर्माण विधिओं के साथ इनके उचित उदाहरण के बारे में विचार किया।

आयुर्वेदीय संहिताओं ने वानस्पतिक, जांतव और पार्थिव द्रव्यों से उत्पन्न प्राकृतिक उत्पादों का एक विस्तृत क्षेत्र वर्णित किया है। पंचकर्म चिकित्सा में मुख्यत: वानस्पतिक एवं जांतव उत्पाद स्वास्थ्य एवं रोग के विभिन्न अवस्थाओं में प्राथमिकता दी जाती है। आयुर्वेद में पांच मूलभूत विधियां ताजे वानस्पतिक द्रव्यों के योग बनाने के लिए वर्णित हैं। ये स्वरस (Expressed juice), कल्क (Paste), क्वाथ (Decoction) हिम (Cold infusion), और फाण्ट (Hot infusion) है।

वानस्पतिक योगों के पांच स्वरूप सम्मिलित रूप से पञ्चकषाय कल्पना यथा–वानस्पतिक योगों के पांच स्वरूप कहलाते हैं।

तैलीय योगों के प्रकार और इनका प्रयोग भी इस अध्याय में वर्णित हैं। इसके बावजूद, द्रव्यों के सामान्य योग और इनके प्रयोग विस्तार से वर्णित हैं जो पंचकर्म प्रक्रिया से संबंधित हैं

पाठांत प्रश्न

1. आयुर्वेदिक औषधि निर्माण की मूलभूत कल्पना का वर्णन करें।
2. वानस्पतिक द्रव्यों के निर्माण की विधियों पर विस्तार से व्याख्या लिखें।
3. स्नेहपाक को परिभाषित करें और पंचकर्म प्रक्रिया में प्रयोग सामान्य योगों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

   (क) तैलपाक।

   (ख) पश्चात कर्म।

   (ग) पूर्व कर्म में औषधीय प्रयोग।

   (घ) पुटपाक।

   (ङ) चूर्ण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ग 3. ख 4. ग 5. ग

9

पंचकर्म चिकित्सा का व्यवहारिक पक्ष

आयुर्वेदिक संहिताओं में स्रोतांसी (स्रोतस) लक्ष्य यथा–असंख्य और अदृश्य के रूप में वर्णित है। इन स्रोतसों के कार्यों में कोई परिवर्तन अपचित पदार्थों का शरीर के विभिन्न भागों में अनुचित संवहन, सामान्य पोषण एवं उत्सर्जन प्रक्रिया को प्रभावित करता है। ये बाधाएं अंतत: रोगों के उत्पत्ति को बढ़ावा देती हैं। संशोधन चिकित्सा शरीर स्रोतसों के स्वच्छता में सहायक हैं एवं स्रोतसों के सामान्य संवहन के लिए उनका कायाकल्प कर देती हैं। पंचकर्म एक शास्त्रोक्त निर्मित संशोधन प्रक्रिया है।

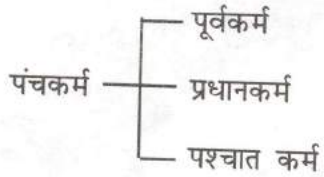

इन प्रक्रियाओं का सम्मिलित उपयोग संशोधन चिकित्सा यथा–जैविक संशोधन कहलाता है। संशोधन का मूल उद्देश्य न केवल शरीर की सफाई करना है बल्कि इसका उद्देश्य रोग अवस्था के साथ-साथ रोग की प्रक्रिया को दूर करना भी है।

उद्देश्य–

- इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:
- पूर्वकर्म और प्रधान कर्म के प्रायोगिक पक्ष को समझना;
- पंचकर्म के चिकित्सकीय पक्ष की व्याख्या करना;
- विशिष्ट पंचकर्म और पश्चात कर्म के वांछित/अपेक्षित प्रभाव का वर्णन करें।

9.1 पूर्वकर्म का व्यवहारिक पक्ष

पंचकर्म के प्रारंभिक भाग में, यह आवश्यक है कि स्नेहन के पश्चात स्वेदन करें। स्नेहन में

तैलीय पदार्थों का बाह्य प्रयोग एवं आभ्यान्तर सेवन अभ्यंग और पान के उपाय द्वारा किया जाता है। आयुर्वेदीय संहिताओं में घृत, तैल, वसा और मज्जा स्नेहन कर्म के उद्देश्य के लिए विशेषरूप से वर्णित है। स्नेहन का प्रयोग प्रकुपित दोषों को स्निग्ध, विक्षेपित, पिच्छिल और द्रवित करने के लिए किया जाता है और इसलिए दोषों को निकालने का कारण है। तैलीय पदार्थों के प्रयोग द्वारा चिपके और अचल प्रकुपित दोष, चल और चिपचिपाहट रहित हो जाते है। स्नेहन के बाह्य प्रयोग की प्रक्रिया यथा–अभ्यंग के रूप में।

इसके अतिरिक्त, अभ्यंग दबाव से तंत्रिका उत्तेजना के लिए काम करता है, लेकिन यह वसा को शरीर में घुलने में भी कारण होता है, जो स्नेहन के ज्यादातर लाभ के लिए जिम्मेदार होता है।

विश्व के विभिन्न भागों में वसा घुलनशील पदार्थों का कोशिका भित्ती (Membrane) द्वारा तीव्र विकीर्णन के निरुपण के लिए कई प्रयोग किये जा चुके हैं। इन तथ्यों का अवलोकन करके पंचकर्म में प्रारंभिक प्रक्रिया का कार्य करने का तरीका निम्न प्रकार है:–

1. जो वसीय पदार्थ वसा कोशिका भित्ती के समान होते हैं, वे प्रत्यक्ष रीति से कोशिका भित्ती में समाविष्ट हो जाते हैं।

2. कुछ वसाएं वसा में घुलनशील होती है इसलिए ये पदार्थ सीधे कोशिका भित्ती (cell membrane) के माध्यम से साइटोप्लाज्म (cytoplasm) में पहुंच जाते हैं।

बाह्य स्नेहन के दौरान, स्वेदन सामान्यत: शुष्क स्वेद या आर्द्र स्वेद का प्रयोग करके किया जाता है।

द्रव स्वेद, स्वेदन के रूप में एवं आभ्यान्तर प्रयोग के दौरान यह सामान्यत: ऊष्ण जलपान या ऊष्ण सूप के द्वारा वसीय पदार्थों को लेने के बाद किया जाता है। आयुर्वेदीय संहिताओं में स्वेद उत्पन्न करने के लिए कुछ अन्य विधियां भी वर्णित है जैसे–व्यायाम, सूर्य किरणे इत्यादि। ये शारीरिक व्यायाम का अलग स्वरूप है। जो शरीर के चय अपचय क्रिया को बढ़ा देती है और तब स्वेद उत्पन्न होता है।

- स्नेहन के पश्चात ताप का प्रयोग कोशिका भित्ती के बीच ताप अंतराल उत्पन्न करता है और कोशिका भित्ती (cell membrane) के द्वारा वसीय पदार्थों के प्रवाह को बढ़ाता है।
- कम तापमात्रा में कोशिका भित्ती के ऊपर वसा (lipoid vesical) के निर्माण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।
- ये आयतन के प्रसारण में और सतह के क्षेत्र की वृद्धि में ये कारण है। स्नेहन ओर स्वेदन के समय सभी कोशिकाएं अपने सतह के ऊपर बढ़ती है। और कोशिका भित्ती बाहरी कणिकाओं को आने से रोकती है। स्वेदन कर्म से जो कणिकाएं कोशिका भित्ती से बाहर हो जाती है। वे कम दबाव के तरफ बढ़ती है। ये पूरी घटना जिससे कोशिका भित्ती का घिरना और उसके सामूहिक कार्य जो अन्य कोशिका भित्ती के गठन में परिवर्तित होता है उसे वैज्ञानिक पलाडे का मेम्ब्रेन फ्लो हाइपोथेसिस कहा जाता है।

- इस तरह से वसीय वर्जित पदार्थ रक्त में आता है और फिर यकृत, फुफ्फुस, और गुर्दे (वृक्क) के माध्यम से शरीर से बाहर चला जाता है। आयुर्वेद में इस प्रक्रिया का वर्णन प्रकुपित दोष धातु मल के शाखा से कोष्ठ में और कोष्ठ से महत्त्वपूर्ण अंगों में जाने के रूप में किया गया है।

उचित स्नेहपान का प्रभाव

- पाचक अग्नि का बढ़ना।
- वसा खाने की इच्छा का त्याग।
- पतले तैलीय मल का निकलना।
- शरीर में हल्कापन।
- निश्चित समय में अपानवायु की प्रवृत्ति।
- शरीर में स्निग्धता।
- तैलीय त्वचा।

उचित अभ्यंग का प्रभाव

- रक्त संवहन और लसिका संवहन को बढ़ाना।
- वात दोष और उससे संबंधित विकारों का शमन।
- शारीरिक एवं मानसिक शिथिलता उत्पन्न होना।
- पेशियों को बल प्रदान करना।

स्वेदन कर्म का प्रभाव

- शीत की शांति या शीत गुण की शांति।
- दोषों का तरल होना या दोष द्रवित हो जाते हैं।
- वेदना और जकड़ाहट से आराम।
- क्षुधा (भूख) का बढ़ना और गुरुता से आराम।
- शरीर स्रोतसों का शोधन और शरीर में चिकनापन (स्निग्धता)।
- स्थिर दोष शरीर के दूरस्थ भाग से केंद्रीय भाग के लिए गतिशील होंगे। उचित स्वेदन और व्याधि की अनुत्पत्ति।

9.2 पंचकर्म का व्यवहारिक पक्ष

ये शरीर के मुख्य स्रोतसों मुख्यतः आमाशय-आंत्रनलिका और उर्ध्व श्वसन नलिका से उत्सर्जित पदार्थों को बाहर निकालने की प्रक्रिया है। विभिन्न पंचकर्म प्रक्रियाओं के कार्य प्रक्रिया, विधि, निर्देश, वर्जन (निषेध), ऋतुओं की साम्यता, दिन का कौन-सा भाग, दिशानिर्देश, लक्षण एवं चिह्न पहले के अध्याय में वर्णित हैं।

चित्र 9.1 : पंचकर्म का व्यवहारिक पक्ष

9.3 पंचकर्म चिकित्सा का चिकित्सकीय महत्त्व–

- पंचकर्म चिकित्सा, का प्रयोग रोकथाम, चिकित्सकीय और वर्धनात्मक अवस्थाओं के विस्तृत क्षेत्र से संबंधित सभी मामलों में किया जाता है।
- अगर शोधन प्रक्रिया न की जाय तो संरक्षणात्मक प्रबंधन उचित रूप से काम नहीं करता।
- यह रोगों के प्रबंधन का सामान्य मार्ग है।
- अगर यह ऋतुओं और शरीर संगठन के अनुसार या आधार पर किया जाय, तो यह जैव-शोधन, व्याधिक्षमता को बढ़ाता है और रोगों की रोकथाम भी करता है।

- अगर यह नियमित आधार पर या नियमित रूप से किया जाय तो यह वृद्धावस्था की प्रक्रिया को धीमा कर देती है।
- यह सम्पूर्ण रोग चिकित्सा को विशिष्ट विचार प्रदान करती है। अन्य चिकित्सा विज्ञान के पास कम से कम सैद्धान्तिक स्तर पर इस प्रकार की कोई चिकित्सा नहीं हैं।
- इसके परिणामस्वरूप अनेक चिकित्सकीय लाभ होते हैं जैसे–
  1. विशिष्ट रोगों पर प्रभाव – वांछित लाभ या इच्छित लाभ।
  2. शरीरक्रिया चिकित्सा प्रभाव – तत्काल लाभ।
  3. सामान्य रोगप्रतिरोधक्षमता (immunity) पर प्रभाव – लम्बे समय तक लाभ।
- शल्य कर्म (surgery) के लाभ निश्चित तौर पर मिलेंगे अगर यह पंचकर्म चिकित्सा के बाद किया जाय।
- रसायन एवं वाजीकरण के वांछित प्रभाव के लिए पंचकर्म चिकित्सा जरूरी है।

वमन कर्म का प्रभाव

- दोषों का कफ, पित्त, वात के क्रम में निकलना।
- वक्ष प्रदेश और शरीर अंङ्गों में लघुता (lightness) की प्रतीति।
- मानसिक और इंद्रिय प्रसन्नता।
- हृदय के कार्यों में वृद्धि।
- कफ और पित्त संबंधित विकारों की तीव्रता में कमी।
- उर्ध्व श्वसन और आमाशय-आंत्रगत स्रोतसों का शोधन।

विरेचन कर्म का प्रभाव

- छोटी आन्त्र का शोधन।
- दोषों का वात, पित्त कफ के क्रम में निकलना।
- भूख और पाचन क्षमता बढ़ना।
- पित्त और वात संबंधित विकारों की तीव्रता में कमी।
- शरीर में लघुता।
- निश्चित समय पर बिना किसी हानि के वायु का निकलना।
- मानसिक और इन्द्रिय प्रसन्नता में वृद्धि।

वस्तिकर्म का प्रभाव

- प्राकृतिक वेगों जैसे पुरीष, अपानवायु और मूत्र का नियमित निकलना।
- दोषों का मल, पित्त, कफ और वात के क्रम में निकलना।

- वात दोष के विकारों का शमन।
- शरीर अंङ्गों में लघुता की प्रतीति।
- भूख और पाचन क्षमता बढ़ना।
- रोगों का ठीक होना।
- दोष, धातु और मलों की साम्यावस्था को प्राप्त करना।
- शारीरिक और मानसिक बल को बढ़ाना।
- स्मरणशक्ति और धृति की शक्ति को बढ़ाना।

शिरोविरेचन कर्म का प्रभाव – औषधीय नस्य लेने से निम्नांकित लाभदायक प्रभाव होता है।

- शरीर में लघुता।
- शिर में हल्कापन।
- स्रोतसों की सफाई।
- इन्द्रियों में प्रसन्नता प्रदान करता है।
- मानसिक प्रसन्नता प्रदान करता है।
- कान, नाक, गला और चेहरे के साथ-साथ उच्च केंद्र के रोगों की तीव्रता में कमी
- कान, नाक, गला और शिर के रोगों को रोकता है।
- वृद्धावस्था देर से आती है।
- बालों का सफेद होना, बालों का गिरना, बालों की रूसी, मुखदूषिका इत्यादि का निवारण होता है।

9.4 पश्चात कर्म–

पंचकर्म प्रक्रिया के पूर्ण होने के पश्चात पश्चात कर्म निर्देशित है। इसके परिणामस्वरूप निम्नांकित लाभदायक प्रभाव होते है:

- यह रोगी की भूख (क्षुधा) को बढ़ाता है।
- यह रोगी की पाचन क्षमता को बढ़ाता है।
- यह भूख और आमाशय-आन्त्र नलिका के सम्मिलित कार्यों को बढ़ाता है।
- अन्त में यह चयापचय कार्यों व अन्य सभी क्रियाओं को बढ़ाता है।

पाठगत प्रश्न 9.1

रिक्त स्थान भरें:

1. स्नेहन में तैलीय पदार्थों का ..... प्रयोग ..... के उपाय द्वारा किया जाता है।
2. पर्याप्त अभ्यंग ..... और ..... आराम उत्पन्न करता है।
3. संरक्षण प्रबंधन उचित रूप से काम नहीं करता है अगर .....।
4. शिरोविरेचन ..... के रोकथाम में सहायक है।
5. पाचन और भूख ..... द्वारा बढ़ते है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने पंचकर्म के व्यवहारिक पक्ष पर विचार किया। यथा–स्नेहन और स्वेदन कर्म के साथ इसका वांछित प्रभाव, साथ में पंचकर्म का संपूर्ण व्यवहारिक पक्ष और इसका चिकित्सकीय महत्व। फिर हमने वमन, विरेचन, वस्तिकर्म और शिरोविरेचन के विशिष्ट लाभदायक प्रभावों को भी समझा, जो इस संदर्भ/प्रकरण में वर्णित है। इसमें पश्चात कर्म के महत्त्व का व्यवहार कर सामान्य आहार परिचर्या को प्राप्त करना भी है।

पाठांत प्रश्न

1. स्नेहन और स्वेदन कर्म के कार्य करने की विधि का विस्तार में वर्णन करें।
2. पंचकर्म के चिकित्सकीय महत्व पर विस्तार से व्याख्या दें।
3. निम्न के लाभदायक प्रभाव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें–

   (क) नस्य कार्य (ख) पश्चात कर्म (ग) शिरोविरेचन

   (घ) विरेचन (ङ) वस्ति कर्म

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. बाह्य और आभ्यान्तर, अभ्यंग और पान।
2. शारीरिक, मानसिक।
3. शोधक प्रक्रियायें नहीं करायी जाती हैं।
4. कान, नाक, गला, नेत्र और उर्ध्वजत्रूगत रोगों।
5. पश्चात कर्म।